विषय-सूची

(१) ईशावास्योपनिषद्

(२) केनोपनिषद्

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय

(प्रथम वल्ली)

(द्वितीय वल्ली)

(४) प्रश्नोपनिषद्

(प्रथम प्रश्न)

(५) मुण्डकोपनिषद्

(द्वितीय खण्ड)

(६) माण्डूक्योपनिषद्

(७) ऐतरेयोपनिषद्

प्रथम अध्याय

(प्रथम खण्ड)

(द्वितीय खण्ड)

तृतीय अध्याय

(प्रथम खण्ड)

(८) तैत्तिरीयोपनिषद्

(शीक्षा-वल्ली)

ब्रह्मानन्दवल्ली

भृगुवल्ली

(९) श्वेताश्वतरोपनिषद्

(प्रथम अध्याय)

(द्वितीय अध्याय)

तृतीय अध्याय

षष्ठ अध्याय



॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

ईशावास्योपनिषद्

यह ईशावास्योपनिषद् शुक्लयजुर्वेदकाण्वशाखीय संहिताका चालीसवाँ अध्याय है। मन्त्र-भागका अंश होनेसे इसका विशेष महत्त्व है। इसीको सबसे पहला उपनिषद् माना जाता है। शुक्लयजुर्वेदके प्रथम उनतालीस अध्यायोंमें कर्मकाण्डका निरूपण हुआ है। यह उस काण्डका अन्तिम अध्याय है और इसमें भगवत्तत्त्वरूप ज्ञानकाण्डका निरूपण किया गया है। इसके पहले मन्त्रमें '**ईशा-वास्यम्**' वाक्य आनेसे इसका नाम 'ईशावास्य' माना गया है।

शान्तिपाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥*
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ=सच्चिदानन्दघन; **अदः**=वह परब्रह्म; **पूर्णम्**=सब प्रकारसे पूर्ण है; **इदम्**=यह (जगत् भी); **पूर्णम्**=पूर्ण (ही) है; (क्योंकि) **पूर्णात्**=उस पूर्ण (परब्रह्म) से ही; **पूर्णम्**=यह पूर्ण; **उदच्यते**=उत्पन्न हुआ है; **पूर्णस्य**=पूर्णके; **पूर्णम्**=पूर्णको; **आदाय**=निकाल लेनेपर (भी); **पूर्णम्**=पूर्ण; **एव**=ही; **अवशिष्यते**=बच रहता है।

व्याख्या—वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकारसे सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्मसे ही पूर्ण है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तमसे ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्मकी पूर्णतासे जगत् पूर्ण है, इसलिये भी वह परिपूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्ममेंसे पूर्णको निकाल लेनेपर भी वह पूर्ण ही बच रहता है।

त्रिविध तापकी शान्ति हो।

---

* यह मन्त्र बृहदारण्यक-उपनिषद्के पाँचवें अध्यायके प्रथम ब्राह्मणकी प्रथम कण्डिकाका पूर्वार्द्धरूप है।

ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥ १॥

जगत्याम्=अखिल ब्रह्माण्डमें; **यत् किं च**=जो कुछ भी; **जगत्**=जड-चेतनस्वरूप जगत् है; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=समस्त; **ईशा**=ईश्वरसे; **वास्यम्**=व्याप्त है; **तेन**=उस ईश्वरको साथ रखते हुए; **त्यक्तेन**=त्यागपूर्वक; **भुञ्जीथाः**=(इसे) भोगते रहो; **मा गृधः**=(इसमें) आसक्त मत होओ; (क्योंकि) **धनम्**=धन-भोग्य-पदार्थ; **कस्य स्वित्**=किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है॥ १॥

व्याख्या—मनुष्योंके प्रति वेदभगवान्का पवित्र आदेश है कि अखिल विश्व-ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी यह चराचरात्मक जगत् तुम्हारे देखने-सुननेमें आ रहा है, सब-का-सब सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वकल्याणगुणस्वरूप परमेश्वरसे व्याप्त है; सदा-सर्वत्र उन्हींसे परिपूर्ण है (गीता ९।४)। इसका कोई भी अंश उनसे रहित नहीं है (गीता १०।३९, ४२)। यों समझकर उन ईश्वरको निरन्तर अपने साथ रखते हुए—सदा-सर्वदा उनका स्मरण करते हुए ही तुम इस जगत्में ममता और आसक्तिका त्याग करके केवल कर्तव्य-पालनके लिये ही विषयोंका यथाविधि उपभोग करो अर्थात्—विश्वरूप ईश्वरकी पूजाके लिये ही कर्मोंका आचरण करो। विषयोंमें मनको मत फँसने दो, इसीमें तुम्हारा निश्चित कल्याण है (गीता २।६४; ३।९; १८।४६)। वस्तुतः ये भोग्य-पदार्थ किसीके भी नहीं हैं। मनुष्य भूलसे ही इनमें ममता और आसक्ति कर बैठता है। ये सब परमेश्वरके हैं और उन्हींकी प्रसन्नताके लिये इनका उपयोग होना चाहिये॥ १॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ २॥

इह=इस जगत्में; **कर्माणि**=शास्त्रनियत कर्मोंको; **कुर्वन्**=(ईश्वरपूजार्थ) करते हुए; **एव**=ही; **शतम् समाः**=सौ वर्षोंतक; **जिजीविषेत्**=जीनेकी इच्छा करनी चाहिये; **एवम्**=इस प्रकार (त्यागभावसे, परमेश्वरके लिये); **कर्म**=किये जानेवाले कर्म; **त्वयि**=तुझ; **नरे**=मनुष्यमें; **न लिप्यन्ते**=लिप्त नहीं होंगे;

इतः=इससे (भिन्न); **अन्यथा**=अन्य कोई प्रकार अर्थात् मार्ग; **न अस्ति**=नहीं है (जिससे कि मनुष्य कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके) ॥ २ ॥

व्याख्या—पूर्व मन्त्रके कथनानुसार जगत्के एकमात्र कर्ता, धर्ता, हर्ता, सर्वशक्तिमान्, सर्वमय परमेश्वरका सतत स्मरण रखते हुए सब कुछ उन्हींका समझकर उन्हींकी पूजाके लिये शास्त्रनियत कर्तव्यकर्मोंका आचरण करते हुए ही सौ वर्षतक जीनेकी इच्छा करो—इस प्रकार अपने पूरे जीवनको परमेश्वरके प्रति समर्पण कर दो। ऐसा समझो कि शास्त्रोक्त स्वकर्मका आचरण करते हुए जीवन-निर्वाह करना केवल परमेश्वरकी पूजाके लिये ही है, अपने लिये नहीं—भोग भोगनेके लिये नहीं। यों करनेसे वे कर्म तुझे बन्धनमें नहीं डाल सकेंगे। कर्म करते हुए कर्मोंसे लिप्त न होनेका यही एकमात्र मार्ग है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग कर्मबन्धनसे मुक्त होनेका नहीं है (गीता २। ५०,५१;५। १०) ॥ २ ॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार कर्मफलरूप जन्मबन्धनसे मुक्त होनेके निश्चित मार्गका निर्देश करके अब इसके विपरीत मार्गपर चलनेवाले मनुष्योंकी गतिका वर्णन करते हैं—*

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥

असुर्याः=असुरोंके; (जो) **नाम**=प्रसिद्ध; **लोकाः**=नाना प्रकारकी योनियाँ एवं नरकरूप लोक हैं; **ते**=वे सभी; **अन्धेन तमसा**=अज्ञान तथा दुःख-क्लेशरूप महान् अन्धकारसे; **आवृताः**=आच्छादित हैं; **ये के च**=जो कोई भी; **आत्महनः**=आत्माकी हत्या करनेवाले; **जनाः**=मनुष्य हों; **ते**=वे; **प्रेत्य**=मरकर; **तान्**=उन्हीं भयंकर लोकोंको; **अभिगच्छन्ति**=बार-बार प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

व्याख्या—मानव-शरीर अन्य सभी शरीरोंसे श्रेष्ठ और परम दुर्लभ है एवं वह जीवको भगवान्की विशेष कृपासे जन्म-मृत्युरूप संसार-समुद्रसे तरनेके लिये ही मिलता है। ऐसे शरीरको पाकर भी जो मनुष्य अपने कर्मसमूहको ईश्वर-पूजाके लिये समर्पण नहीं करते और कामोपभोगको ही जीवनका परम ध्येय मानकर विषयोंकी आसक्ति और कामनावश जिस-किसी प्रकारसे भी

केवल विषयोंकी प्राप्ति और उनके यथेच्छ उपभोगमें ही लगे रहते हैं; वे वस्तुतः आत्माकी हत्या करनेवाले ही हैं; क्योंकि इस प्रकार अपना पतन करनेवाले वे लोग अपने जीवनको केवल व्यर्थ ही नहीं खो रहे हैं वरं अपनेको और भी अधिक कर्मबन्धनमें जकड़ रहे हैं। इन काम-भोग-परायण लोगोंको—चाहे वे कोई भी क्यों न हों, उन्हें चाहे संसारमें कितने ही विशाल नाम, यश, वैभव या अधिकार प्राप्त हों, मरनेके बाद कर्मोंके फलस्वरूप बार-बार उन कूकर-शूकर, कीट, पतंगादि विभिन्न शोक-संतापपूर्ण आसुरी योनियोंमें और भयानक नरकोंमें भटकना पड़ता है (गीता १६। १६, १९, २०), जो कि ऐसे आसुरी स्वभाववाले दुष्टोंके लिये निश्चित किये हुए हैं और महान् अज्ञानरूप अन्धकारसे आच्छादित हैं। इसीलिये श्रीभगवान्‌ने गीतामें कहा है कि मनुष्यको अपने द्वारा अपना उद्धार करना चाहिये, अपना पतन नहीं करना चाहिये (६।५) ॥ ३ ॥

सम्बन्ध—*जो परमेश्वर सम्पूर्ण जगत्‌में व्याप्त हैं, जिनका सतत स्मरण करते हुए तथा जिनकी पूजाके लिये ही समस्त कर्म करने चाहिये, वे कैसे हैं—इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

(**तत्**)=वे परमेश्वर; **अनेजत्**=अचल; **एकम्**=एक; (और) **मनसः**= मनसे (भी); **जवीयः**=अधिक तीव्र गतियुक्त हैं; **पूर्वम्**=सबके आदि; **अर्षत्**=ज्ञानस्वरूप या सबके जाननेवाले हैं; **एनत्**=इन परमेश्वरको; **देवाः**= इन्द्रादि देवता भी; **न आप्नुवन्**=नहीं पा सके या जान सके हैं; **तत्**=वे (परब्रह्म पुरुषोत्तम); **अन्यान्**=दूसरे; **धावतः**=दौड़नेवालोंको; **तिष्ठत्**=(स्वयं) स्थित रहते हुए ही; **अत्येति**=अतिक्रमण कर जाते हैं; **तस्मिन्**=उनके होनेपर ही—उन्हींकी सत्ता-शक्तिसे; **मातरिश्वा**=वायु आदि देवता; **अपः**=जलवर्षा आदि क्रिया; **दधाति**=सम्पादन करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

व्याख्या—वे सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अचल और एक हैं,

तथापि मनसे भी अधिक तीव्र वेगयुक्त हैं। जहाँतक मनकी गति है, वे उससे भी कहीं आगे पहलेसे ही विद्यमान हैं। मन तो वहाँतक पहुँच ही नहीं पाता। वे सबके आदि और ज्ञानस्वरूप हैं अथवा सबके आदि होनेके कारण सबको पहलेसे ही जानते हैं। पर उनको देवता तथा महर्षिगण भी पूर्णरूपसे नहीं जान सकते (गीता १०। २)। जितने भी तीव्र वेगयुक्त बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ अथवा वायु आदि देवता हैं, अपनी शक्तिभर परमेश्वरके अनुसंधानमें सदा दौड़ लगाते रहते हैं; परंतु परमेश्वर नित्य अचल रहते हुए ही उन सबको पार करके आगे निकल जाते हैं। वे सब वहाँतक पहुँच ही नहीं पाते। असीमकी सीमाका पता ससीमको कैसे लग सकता है। बल्कि वायु आदि देवताओंमें जो शक्ति है, जिसके द्वारा वे जलवर्षण, प्रकाशन, प्राणिप्राणधारण आदि कर्म करनेमें समर्थ होते हैं, वह इन अचिन्त्यशक्ति परमेश्वरकी शक्तिका एक अंशमात्र ही है। उनका सहयोग मिले बिना ये सब कुछ भी नहीं कर सकते॥ ४॥

सम्बन्ध—*अब परमेश्वरकी अचिन्त्यशक्तिमत्ता तथा व्यापकता प्रकारान्तरसे पुनः वर्णन करते हैं—*

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ ५॥

तत्=वे; **एजति**=चलते हैं; **तत्**=वे; **न एजति**=नहीं चलते; **तत्**=वे; **दूरे**=दूरसे भी दूर हैं; **तत्**=वे; **उ अन्तिके**=अत्यन्त समीप हैं; **तत्**=वे; **अस्य**=इस; **सर्वस्य**=समस्त जगत्के; **अन्तः**=भीतर परिपूर्ण हैं; (और) **तत्**=वे; **अस्य**=इस; **सर्वस्य**=समस्त जगत्के; **उ बाह्यतः**=बाहर भी हैं॥ ५॥

व्याख्या—वे परमेश्वर चलते भी हैं और नहीं भी चलते; एक ही कालमें परस्परविरोधी भाव, गुण तथा क्रिया जिनमें रह सकती हैं, वे ही तो परमेश्वर हैं। यह उनकी अचिन्त्य शक्तिकी महिमा है। दूसरे प्रकारसे यह भी कहा जा सकता है कि भगवान् जो अपने दिव्य परम धाममें और लीला-धाममें अपने प्रिय भक्तोंको सुख पहुँचानेके लिये अप्राकृत सगुण-साकार रूपमें प्रकट रहकर लीला किया करते हैं, यह उनका चलना है; और निर्गुणरूपसे जो

****

सदा-सर्वथा अचल स्थित हैं, यह उनका न चलना है। इसी प्रकार वे श्रद्धा-प्रेमसे रहित मनुष्योंको कभी दर्शन नहीं देते, अतः उनके लिये दूर-से-दूर हैं; और प्रेमकी पुकार सुनते ही जिन प्रेमीजनोंके सामने चाहे जहाँ उसी क्षण प्रकट हो जाते हैं, उनके लिये वे समीप-से-समीप हैं। इसके अतिरिक्त वे सदा-सर्वत्र परिपूर्ण हैं, इसलिये दूर-से-दूर भी वे ही हैं और समीप-से-समीप भी वे ही हैं; क्योंकि ऐसा कोई स्थान ही नहीं है, जहाँ वे न हों। सबके अन्तर्यामी होनेके कारण भी वे अत्यन्त समीप हैं; पर जो अज्ञानी लोग उन्हें इस रूपमें नहीं पहचानते, उनके लिये वे बहुत दूर हैं (गीता १३। १५)। वस्तुतः वे इस समस्त जगत्के परम आधार हैं और परम कारण वे ही हैं; इसलिये बाहर-भीतर सभी जगह वे ही परिपूर्ण हैं (गीता ७। ७) ॥ ५ ॥

सम्बन्ध—*अब अगले दो मन्त्रोंमें इन परब्रह्म परमेश्वरको जाननेवाले महापुरुषकी स्थितिका वर्णन किया जाता है—*

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

तु=परंतु; **यः**=जो मनुष्य; **सर्वाणि**=सम्पूर्ण; **भूतानि**=प्राणियोंको; **आत्मनि**=परमात्मामें; **एव**=ही; **अनुपश्यति**=निरन्तर देखता है; **च**=और; **सर्वभूतेषु**=सम्पूर्ण प्राणियोंमें; **आत्मानम्**=परमात्माको (देखता है); **ततः**=उसके पश्चात् (वह कभी भी); **न विजुगुप्सते**=किसीसे घृणा नहीं करता ॥ ६ ॥

व्याख्या—इस प्रकार जो मनुष्य प्राणिमात्रको सर्वाधार परब्रह्म पुरुषोत्तम परमात्मामें देखता है और सर्वान्तर्यामी परम प्रभु परमात्माको प्राणिमात्रमें देखता है, वह कैसे किससे घृणा या द्वेष कर सकता है। वह तो सदा-सर्वत्र अपने परम प्रभुके ही दर्शन करता हुआ (गीता ६। २९-३०) मन-ही-मन सबको प्रणाम करता रहता है तथा सबकी सब प्रकारसे सेवा करना और उन्हें सुख पहुँचाना चाहता है ॥ ६ ॥

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

यस्मिन्=जिस स्थितिमें; **विजानतः**=परब्रह्म परमेश्वरको भलीभाँति जाननेवाले महापुरुषके (अनुभवमें); **सर्वाणि**=सम्पूर्ण; **भूतानि**=प्राणी; **आत्मा**=एकमात्र परमात्मस्वरूप; **एव**=ही; **अभूत्**=हो चुकते हैं; **तत्र**=उस अवस्थामें (उस); **एकत्वम्**=एकताका—एकमात्र परमेश्वरका; **अनुपश्यतः**=निरन्तर साक्षात् करनेवाले पुरुषके लिये; **कः**=कौन-सा; **मोहः**=मोह (रह जाता है और); **कः**=कौन-सा; **शोकः**=शोक। (वह शोक-मोहसे सर्वथा रहित, आनन्दपरिपूर्ण हो जाता है) ॥ ७ ॥

व्याख्या—इस प्रकार जब मनुष्य परमात्माको भलीभाँति पहचान लेता है, जब उसकी सर्वत्र भगवद्दृष्टि हो जाती है—जब वह प्राणिमात्रमें एकमात्र तत्त्व श्रीपरमात्माको ही देखता है, तब उसे सदा-सर्वत्र परमात्माके दर्शन होते रहते हैं। उस समय उसके अन्तःकरणमें शोक, मोह आदि विकार कैसे रह सकते हैं ? वह तो इतना आनन्दमग्न हो जाता है कि शोक-मोहादि विकारोंकी छाया भी कहीं उसके चित्तप्रदेशमें नहीं रह जाती। लोगोंके देखनेमें वह सब कुछ करता हुआ भी वस्तुतः अपने प्रभुमें ही क्रीडा करता है (गीता ६। ३१)। उसके लिये प्रभु और प्रभुकी लीलाके अतिरिक्त अन्य कुछ रह ही नहीं जाता ॥ ७ ॥

सम्बन्ध—*अब इस प्रकार परमप्रभु परमेश्वरको तत्त्वसे जाननेका तथा सर्वत्र देखनेका फल बतलाते हैं*—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-
मस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतो-
ऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

सः=वह महापुरुष; **शुक्रम्**=(उन) परम तेजोमय; **अकायम्**=सूक्ष्मशरीरसे रहित; **अव्रणम्**=छिद्ररहित या क्षतरहित; **अस्नाविरम्**=शिराओंसे रहित—स्थूल पाञ्चभौतिक शरीरसे रहित; **शुद्धम्**=अप्राकृत दिव्य सच्चिदानन्दस्वरूप; **अपापविद्धम्**=शुभाशुभकर्म-सम्पर्कशून्य परमेश्वरको;

पर्यगात्=प्राप्त हो जाता है; (जो) **कविः**=सर्वद्रष्टा; **मनीषी**=सर्वज्ञ एवं ज्ञानस्वरूप; **परिभूः**=सर्वोपरि विद्यमान एवं सर्वनियन्ता; **स्वयम्भूः**=स्वेच्छासे प्रकट होनेवाले हैं (और); **शाश्वतीभ्यः**=अनादि; **समाभ्यः**=कालसे; **याथातथ्यतः**=सब प्राणियोंके कर्मानुसार यथायोग्य; **अर्थान्**=सम्पूर्ण पदार्थोंकी; **व्यदधात्**=रचना करते आये हैं ॥ ८ ॥

व्याख्या—उपर्युक्त वर्णनके अनुसार परमेश्वरको सर्वत्र जानने-देखनेवाला महापुरुष उन परब्रह्म पुरुषोत्तम सर्वेश्वरको प्राप्त होता है, जो शुभाशुभ कर्मजनित प्राकृत सूक्ष्म देह तथा पाञ्चभौतिक अस्थि-शिरा-मांसादिमय षड्विकारयुक्त स्थूल देहसे रहित, छिद्ररहित, दिव्य शुद्ध सच्चिदानन्दघन हैं; एवं जो क्रान्तदर्शी—सर्वद्रष्टा हैं, सबके ज्ञाता, सबको अपने नियन्त्रणमें रखनेवाले सर्वाधिपति हैं; और कर्मपरवश नहीं वरं स्वेच्छासे प्रकट होनेवाले हैं तथा जो सनातन कालसे सब प्राणियोंके लिये उनके कर्मानुसार समस्त पदार्थोंकी यथायोग्य रचना और विभागव्यवस्था करते आये हैं ॥ ८ ॥

सम्बन्ध—*अब अगले तीन मन्त्रोंमें विद्या और अविद्याका तत्त्व समझाया जायगा। इस प्रकरणमें परब्रह्म परमेश्वरकी प्राप्तिके साधन 'ज्ञान' को विद्याके नामसे कहा गया है और स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति अथवा इस लोकके विविध भोगैश्वर्यकी प्राप्तिके साधन 'कर्म'को अविद्याके नामसे। इन ज्ञान और कर्म—दोनोंके तत्त्वको भलीभाँति समझकर उनका अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य ही इन दोनों साधनोंके द्वारा सर्वोत्तम तथा वास्तविक फल प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नहीं— इस रहस्यको समझानेके लिये पहले, उन दोनोंके यथार्थ स्वरूपको न समझकर अनुष्ठान करनेवालोंकी दुर्गतिका वर्णन करते हैं—*

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया्ँरताः ॥ ९ ॥

ये=जो मनुष्य; **अविद्याम्**=अविद्याकी; **उपासते**=उपासना करते हैं, (वे); **अन्धम्**=अज्ञानस्वरूप; **तमः**=घोर अन्धकारमें; **प्रविशन्ति**=प्रवेश करते हैं; (और) **ये**=जो मनुष्य; **विद्यायाम्**=विद्यामें; **रताः**=रत हैं अर्थात् ज्ञानके मिथ्याभिमानमें मत्त हैं; **ते**=वे; **ततः**=उससे; **उ**=भी; **भूयः इव**=मानो

अधिकतर; **तमः**=अन्धकारमें (प्रवेश करते हैं) ॥ ९ ॥

व्याख्या—जो मनुष्य भोगोंमें आसक्त होकर उनकी प्राप्तिके साधनरूप अविद्याका—विविध प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे उन कर्मोंके फलस्वरूप अज्ञानान्धकारसे परिपूर्ण विविध योनियों और भोगोंको ही प्राप्त होते हैं। वे मनुष्य-जन्मके चरम और परम लक्ष्य श्रीपरमेश्वरको न पाकर निरन्तर जन्म-मृत्युरूप संसारके प्रवाहमें पड़े हुए विविध तापोंसे संतप्त होते रहते हैं।

दूसरे जो मनुष्य न तो अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्तापनके अभिमानसे रहित कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं और न विवेक-वैराग्यादि ज्ञानके प्राथमिक साधनोंका ही सेवन करते हैं; परंतु केवल शास्त्रोंको पढ़-सुनकर अपनेमें विद्याका—ज्ञानका मिथ्या आरोप करके ज्ञानाभिमानी बन बैठते हैं, ऐसे, मिथ्या ज्ञानी मनुष्य अपनेको ज्ञानी मानकर, 'हमारे लिये कोई भी कर्तव्य नहीं है' इस प्रकार कहते हुए कर्तव्यकर्मोंका त्याग कर देते हैं और इन्द्रियोंके वशमें होकर शास्त्रविधिसे विपरीत मनमाना आचरण करने लगते हैं। इससे वे लोग सकामभावसे कर्म करनेवाले विषयासक्त मनुष्योंकी अपेक्षा भी अधिकतर अन्धकारको—पशु-पक्षी, शूकर-कूकर आदि नीच योनियोंको और रौरव-कुम्भीपाकादि घोर नरकोंको प्राप्त होते हैं॥ ९ ॥

सम्बन्ध—*शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यको समझकर ज्ञान तथा कर्मका अनुष्ठान करनेसे जो सर्वोत्तम परिणाम होता है, उसका संकेतसे वर्णन करते हैं—*

अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे ॥ १० ॥

विद्यया=ज्ञानके यथार्थ अनुष्ठानसे; **अन्यत् एव**=दूसरा ही फल; **आहुः**=बतलाते हैं; (और) **अविद्यया**=कर्मोंके यथार्थ अनुष्ठानसे; **अन्यत्**=दूसरा (ही) फल; **आहुः**=बतलाते हैं; **इति**=इस प्रकार; (हमने) **धीराणाम्**=(उन) धीर पुरुषोंके; **शुश्रुम**=वचन सुने हैं; **ये**=जिन्होंने; **नः**=हमें; **तत्**=उस विषयको; **विचचक्षिरे**=व्याख्या करके भलीभाँति समझाया था ॥ १० ॥

व्याख्या—सर्वोत्तम फल प्राप्त करानेवाले ज्ञानका यथार्थ स्वरूप है—नित्यानित्यवस्तुका विवेक, क्षणभङ्गुर विनाशशील अनित्य ऐहलौकिक और पारलौकिक भोग-सामग्रियों और उनके साधनोंसे पूर्ण विरक्ति, संयमपूर्ण पवित्र जीवन और एकमात्र सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्मके चिन्तनमें अखण्ड संलग्नता। इस यथार्थ ज्ञानके अनुष्ठानसे प्राप्त होता है—परब्रह्म पुरुषोत्तम (गीता १८। ४९—५५)। यथार्थ ज्ञानका यह सर्वोत्तम फल, ज्ञानाभिमानमें रत स्वेच्छाचारी मनुष्योंको जो दुर्गतिरूप फल मिलता है, उससे सर्वथा भिन्न और विलक्षण है।

इसी प्रकार सर्वोत्तम फल प्राप्त करानेवाले कर्मका स्वरूप है—कर्ममें कर्तापनके अभिमानका अभाव, राग-द्वेष और फल-कामनाका अभाव एवं अपने वर्णाश्रम तथा परिस्थितिके अनुरूप केवल भगवत्सेवाके भावसे श्रद्धापूर्वक शास्त्रविहित कर्मोंका यथायोग्य सेवन। इसके अनुष्ठानसे समस्त दुर्गुण और दुराचारोंका अशेष रूपसे नाश हो जाता है और हर्ष-शोकादि समस्त विकारोंसे रहित होकर साधक मृत्युमय संसार-सागरसे तर जाता है। सकामभावसे किये जानेवाले कर्मोंका जो पुनर्जन्मरूप फल उन कर्ताओंको मिलता है, उससे इस यथार्थ कर्म-सेवनका यह फल सर्वथा भिन्न और विलक्षण है।

इस प्रकार हमने उन परम ज्ञानी महापुरुषोंसे सुना है, जिन्होंने हमें यह विषय पृथक्-पृथक्-रूपसे व्याख्या करके भलीभाँति समझाया था॥ १० ॥

सम्बन्ध—*अब उपर्युक्त प्रकारसे ज्ञान और कर्म—दोनोंके तत्त्वको एक साथ भलीभाँति समझनेका फल स्पष्ट शब्दोंमें बतलाते हैं—*

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयँ् सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥ ११॥

यः=जो मनुष्य; **तत् उभयम्**=उन दोनोंको; (अर्थात्) **विद्याम्**=ज्ञानके तत्त्वको; **च**=और; **अविद्याम्**=कर्मके तत्त्वको; **च**=भी; **सह**=साथ-साथ; **वेद**=यथार्थतः जान लेता है; **अविद्यया**=(वह) कर्मोंके अनुष्ठानसे;

मृत्युम्=मृत्युको; **तीर्त्वा**=पार करके; **विद्यया**=ज्ञानके अनुष्ठानसे; **अमृतम्**=अमृतको; **अश्नुते**=भोगता है अर्थात् अविनाशी आनन्दमय परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्रत्यक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ११॥

व्याख्या—कर्म और अकर्मका वास्तविक रहस्य समझनेमें बड़े-बड़े बुद्धिमान् पुरुष भी भूल कर बैठते हैं (गीता ४। १६)। इसी कारण कर्म-रहस्यसे अनभिज्ञ ज्ञानाभिमानी मनुष्य कर्मको ब्रह्मज्ञानमें बाधक समझ लेते हैं और अपने वर्णाश्रमोचित अवश्यकर्तव्य कर्मोंका त्याग कर देते हैं; परंतु इस प्रकारके त्यागसे उन्हें त्यागका यथार्थ फल—कर्मबन्धनसे छुटकारा नहीं मिलता (गीता १८। ८)। इसी प्रकार ज्ञान (अकर्मावस्था—नैष्कर्म्य) का तत्त्व न समझनेके कारण मनुष्य अपनेको ज्ञानी तथा संसारसे ऊपर उठे हुए मान लेते हैं। अतः वे या तो अपनेको पुण्य-पापसे अलिप्त मानकर मनमाने कर्माचरणमें प्रवृत्त हो जाते हैं, या कर्मोंको भाररूप समझकर उन्हें छोड़ देते हैं और आलस्य, निद्रा तथा प्रमादमें अपने दुर्लभ मानव-जीवनके अमूल्य समयको नष्ट कर देते हैं।

इन दोनों प्रकारके अनर्थोंसे बचनेका एकमात्र उपाय कर्म और ज्ञानके रहस्यको साथ-साथ समझकर उनका यथायोग्य अनुष्ठान करना ही है। इसीलिये इस मन्त्रमें यह कहा गया है कि जो मनुष्य इन दोनोंके तत्त्वको एक ही साथ भलीभाँति समझ लेता है, वह अपने वर्णाश्रम और परिस्थितिके अनुरूप शास्त्रविहित कर्मोंका स्वरूपतः त्याग नहीं करता, बल्कि उनमें कर्तापनके अभिमानसे तथा रागद्वेष और फलकामनासे रहित होकर उनका यथायोग्य आचरण करता है। इससे उसकी जीवनयात्रा भी सुखपूर्वक चलती है और इस भावसे कर्मानुष्ठान करनेके फलस्वरूप उसका अन्तःकरण समस्त दुर्गुणों एवं विकारोंसे रहित होकर अत्यन्त निर्मल हो जाता है और भगवत्कृपासे वह मृत्युमय संसारसे सहज ही तर जाता है। इस कर्मसाधनके साथ-ही-साथ विवेक-वैराग्यसम्पन्न होकर निरन्तर ब्रह्मविचाररूप ज्ञानाभ्यास करते रहनेसे श्रीपरमेश्वरके यथार्थ ज्ञानका उदय होनेपर वह शीघ्र ही परब्रह्म

परमेश्वरको साक्षात् प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

सम्बन्ध—*अब अगले तीन मन्त्रोंमें असम्भूति और सम्भूतिका तत्त्व बतलाया जायगा। इस प्रकरणमें 'असम्भूति' शब्दका अर्थ है— जिनकी पूर्णरूपसे सत्ता न हो, ऐसी विनाशशील देव, पितर और मनुष्यादि योनियाँ एवं उनकी भोग-सामग्रियाँ। इसीलिये चौदहवें मन्त्रमें 'असम्भूति' के स्थानपर स्पष्टतया 'विनाश' शब्दका प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार सम्भूति शब्दका अर्थ है—जिसकी सत्ता पूर्णरूपसे हो वह सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाला अविनाशी परब्रह्म पुरुषोत्तम (गीता ७।६-७)।*

देव, पितर और मनुष्यादिकी उपासना किस प्रकार करनी चाहिये और अविनाशी परब्रह्मकी किस प्रकार—इस तत्त्वको समझकर उनका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य ही उनके सर्वोत्तम फलोंको प्राप्त हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। इस भावको समझानेके लिये पहले, उन दोनोंके यथार्थ स्वरूपको न समझकर अनुष्ठान करनेवालोंकी दुर्गतिका वर्णन करते हैं—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँरताः ॥ १२ ॥

ये=जो मनुष्य; **असम्भूतिम्**=विनाशशील देव-पितर-मनुष्य आदिकी; **उपासते**=उपासना करते हैं; **(ते)**=वे; **अन्धम्**=अज्ञानरूप; **तमः**=घोर अन्धकारमें; **प्रविशन्ति**=प्रवेश करते हैं; (और) **ये**=जो; **सम्भूत्याम्**=अविनाशी परमेश्वरमें; **रताः**=रत हैं अर्थात् उनकी उपासनाके मिथ्याभिमानमें मत्त हैं; **ते**=वे; **ततः**=उनसे; **उ**=भी; **भूयः इव**=मानो अधिकतर; **तमः**=अन्धकारमें (प्रवेश करते हैं) ॥ १२ ॥

व्याख्या—जो मनुष्य विनाशशील स्त्री, पुत्र, धन, मान, कीर्ति, अधिकार आदि इस लोक और परलोकको भोग-सामग्रियोंमें आसक्त होकर उन्हींको सुखका हेतु समझते हैं तथा उन्हींके अर्जन-सेवनमें सदा संलग्न रहते हैं एवं इन भोग-सामग्रियोंकी प्राप्ति, संरक्षण तथा वृद्धिके लिये उन विभिन्न देवता, पितर और मनुष्यादिकी उपासना करते हैं, जो स्वयं जन्म-मरणके चक्रमें पड़े हुए होनेके कारण अभावग्रस्त और शरीरकी दृष्टिसे विनाशशील हैं, उनके उपासक वे भोगासक्त मनुष्य अपनी उपासनाके फलस्वरूप विभिन्न

देवताओंके लोकोंको और विभिन्न भोगयोनियोंको प्राप्त होते हैं। यही उनका अज्ञानरूप घोर अन्धकारमें प्रवेश करना है। (गीता ७। २० से २३)

दूसरे जो मनुष्य शास्त्रके तात्पर्यको तथा भगवान्‌के दिव्य गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको न समझनेके कारण न तो भगवान्‌का भजन-ध्यान ही करते हैं और न श्रद्धाका अभाव तथा भोगोंमें आसक्ति होनेके कारण लोकसेवा और शास्त्रविहित देवोपासनामें ही प्रवृत्त होते हैं, ऐसे वे विषयासक्त मनुष्य झूठ-मूठ ही अपनेको ईश्वरोपासक बतलाकर सरलहृदय जनतासे अपनी पूजा कराने लगते हैं। ये लोग मिथ्याभिमानके कारण देवताओंको तुच्छ बतलाते हैं और शास्त्रानुसार अवश्यकर्तव्य देवपूजा तथा गुरुजनोंका सम्मान-सत्कार करना भी छोड़ देते हैं। इतना ही नहीं, दूसरोंको भी अपने वाग्जालमें फँसाकर उनके मनोंमें भी देवोपासना आदिके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न कर देते हैं। ये लोग अपनेको ही ईश्वरके समकक्ष मानते-मनवाते हुए मनमाने दुराचरणमें प्रवृत्त हो जाते हैं। ऐसे दम्भी मनुष्योंको अपने दुष्कर्मोंका कुफल भोगनेके लिये बाध्य होकर कूकर-शूकर आदि नीच योनियोंमें और रौरव-कुम्भीपाकादि नरकोंमें जाकर भीषण यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं। यही उनका विनाशशील देवताओंकी उपासना करनेवालोंकी अपेक्षा भी अधिकतर घोर अन्धकारमें प्रवेश करना है (गीता १६। १८-१९) ॥ १२ ॥

सम्बन्ध—*शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यको समझकर सम्भूति और असम्भूतिकी उपासना करनेसे जो सर्वोत्तम परिणाम होता है, अब संकेतसे उसका वर्णन करते हैं—*

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥

सम्भवात्=अविनाशी ब्रह्मकी उपासनासे; **अन्यत् एव**=दूसरा ही फल; **आहुः**=बतलाते हैं; (और) **असम्भवात्**=विनाशशील देव-पितर-मनुष्य आदिकी उपासनासे; **अन्यत्**=दूसरा (ही) फल; **आहुः**=बतलाते हैं; **इति**=इस प्रकार; (हमने) **धीराणाम्**=(उन) धीर पुरुषोंके; **शुश्रुम**=वचन सुने हैं; **ये**=जिन्होंने; **नः**=हमें; **तत्**=उस विषयको; **विचचक्षिरे**=व्याख्या करके

भलीभाँति समझाया था॥ १३॥

व्याख्या—अविनाशी ब्रह्मकी उपासनाका यथार्थ स्वरूप है—परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान्‌को सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वाधार, सर्वमय, सम्पूर्ण संसारके कर्ता, धर्ता, हर्ता, नित्य अविनाशी समझना और भक्ति, श्रद्धा तथा प्रेमपरिपूरित हृदयसे नित्य-निरन्तर उनके दिव्य परम मधुर नाम, रूप, लीला, धाम तथा प्राकृत गुणरहित एवं दिव्य गुणगणमय सच्चिदानन्दघन स्वरूपका श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि करते रहना। इस प्रकारकी सच्ची उपासनासे उपासकको शीघ्र ही अविनाशी परब्रह्म पुरुषोत्तमकी प्राप्ति हो जाती है (गीता ९। ३४)। ईश्वरोपासनाका मिथ्या स्वाँग भरनेवाले दम्भियोंको जो फल मिलता है, उससे इन सच्चे उपासकोंको मिलनेवाला यह फल सर्वथा भिन्न और विलक्षण है।

इसी प्रकार विनाशशील देवता, पितर, मनुष्य आदिकी उपासनाका यथार्थ स्वरूप है—शास्त्रों एवं श्रीभगवान्‌के आज्ञानुसार (गीता १७। १४) देवता, पितर, ब्राह्मण, माता-पिता, आचार्य और ज्ञानी महापुरुषोंकी सेवा-पूजादि अवश्य-कर्तव्य समझकर करना और उसको भगवान्‌की आज्ञाका पालन एवं उनकी परम सेवा समझना। इस प्रकार निष्कामभावसे देव-पितर-मनुष्य आदिकी सेवा-पूजा करनेवालोंके अन्तःकरणकी शुद्धि होती है तथा उनको श्रीभगवान्‌की कृपा एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है, जिससे वे मृत्युमय संसार-सागरसे तर जाते हैं। विनाशशील देवता आदिकी सकाम उपासनासे जो फल मिलता है, उससे यह फल सर्वथा भिन्न और विलक्षण है।

इस प्रकार हमने उन धीर तत्त्वज्ञानी महापुरुषोंसे सुना है, जिन्होंने हमें यह विषय पृथक्-पृथक्-रूपसे व्याख्या करके भलीभाँति समझाया था॥ १३॥

सम्बन्ध—*अब उपर्युक्त प्रकारसे सम्भूति और असम्भूति दोनोंके तत्त्वको एक साथ भलीभाँति समझनेका फल स्पष्ट बतलाते हैं—*

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद् वेदोभयँ्‌ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥ १४॥

यः=जो मनुष्य; **तत् उभयम्**=उन दोनोंको; (अर्थात्) **सम्भूतिम्**=अविनाशी परमेश्वरको; **च**=और; **विनाशम्**=विनाशशील देवादिको; **च**=भी; **सह**=साथ-साथ; **वेद**=यथार्थतः जान लेता है; **विनाशेन**=(वह) विनाशशील देवादिकी उपासनासे; **मृत्युम्**=मृत्युको; **तीर्त्वा**=पार करके; **सम्भूत्या**=अविनाशी परमेश्वरकी उपासनासे; **अमृतम्**=अमृतको; **अश्नुते**=भोगता है अर्थात् अविनाशी आनन्दमय परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्रत्यक्ष प्राप्त कर लेता है॥ १४॥

व्याख्या—जो मनुष्य यह समझ लेता है कि परब्रह्म पुरुषोत्तम नित्य, अविनाशी, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वाधिपति, सर्वात्मा और सर्वश्रेष्ठ हैं, वे परमेश्वर नित्य निर्गुण (प्राकृत गुणोंसे सर्वथा रहित) और नित्य सगुण (स्वरूपभूत दिव्यकल्याण-गुणगण-विभूषित) हैं और इसीके साथ जो यह भी समझ लेता है कि देवता, पितर, मनुष्य आदि जितनी भी योनियाँ तथा भोगसामग्रियाँ हैं, सभी विनाशशील, क्षणभङ्गुर और जन्म-मृत्युशील होनेके कारण महान् दुःखके कारण हैं; तथापि इनमें जो सत्ता-स्फूर्ति तथा शक्ति है, वह सभी भगवान्की है और भगवान्के जगच्चक्रके सुचारुरूपसे चलते रहनेके लिये भगवत्प्रीत्यर्थ ही इनकी यथायोग्य सेवा-पूजा आदि करनेकी शास्त्रोंने आज्ञा दी है और शास्त्र भगवान्की ही वाणी हैं, वह मनुष्य ऐहलौकिक तथा पारलौकिक देव-पितरादि लोकोंके भोगोंमें आसक्त न होकर कामना-ममता आदि हृदयसे निकालकर इन सबकी यथायोग्य शास्त्रविहित सेवा-पूजादि करता है। इससे उसकी जीवन-यात्रा सुखपूर्वक चलती है और उसके आभ्यन्तरिक विकारोंका नाश होकर अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है एवं भगवत्कृपासे वह सहज ही मृत्युमय संसार-सागरसे तर जाता है। विनाशशील देवता आदिकी निष्काम उपासनाके साथ-ही-साथ अविनाशी परात्पर प्रभुकी उपासनासे वह शीघ्र ही अमृतरूप परमेश्वरको प्रत्यक्ष प्राप्त कर लेता है॥ १४॥

सम्बन्ध—*श्रीपरमेश्वरकी उपासना करनेवालेको परमेश्वरकी प्राप्ति होती है, यह कहा गया। अतः भगवान्के भक्तको अन्तकालमें परमेश्वरसे उनकी प्राप्तिके लिये किस प्रकार*

प्रार्थना करनी चाहिये, इस जिज्ञासापर कहते हैं—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥ १५॥

पूषन्=हे सबका भरण-पोषण करनेवाले परमेश्वर; **सत्यस्य**=सत्यस्वरूप आप सर्वेश्वरका; **मुखम्**=श्रीमुख; **हिरण्मयेन**=ज्योतिर्मय सूर्यमण्डलरूप; **पात्रेण**=पात्रसे; **अपिहितम्**=ढका हुआ है; **सत्यधर्माय**=आपकी भक्तिरूप सत्यधर्मका अनुष्ठान करनेवाले मुझको; **दृष्टये**=अपने दर्शन करानेके लिये; **तत्**=उस आवरणको; **त्वम्**=आप; **अपावृणु**=हटा लीजिये॥ १५॥

व्याख्या—भक्त इस प्रकार प्रार्थना करे कि 'हे भगवन्! आप अखिल ब्रह्माण्डके पोषक हैं, आपसे ही सबको पुष्टि प्राप्त होती है। आपकी भक्ति ही सत्यधर्म है और मैं उसमें लगा हुआ हूँ; अतएव मेरी पुष्टि—मेरे मनोरथकी पूर्ति तो आप अवश्य ही करेंगे। आपका दिव्य श्रीमुख—सच्चिदानन्दस्वरूप प्रकाशमय सूर्यमण्डलकी चमचमाती हुई ज्योतिर्मयी यवनिकासे आवृत है। मैं आपका निरावरण—प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ, अतएव आपके पास पहुँचकर आपका निरावरण—दर्शन करनेमें बाधा देनेवाले जितने भी, जो भी आवरण—प्रतिबन्धक हों, उन सबको मेरे लिये आप हटा लीजिये! अपने सच्चिदानन्दस्वरूपको प्रत्यक्ष प्रकट कीजिये'॥ १५॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजा-
पत्य व्यूह रश्मीन् समूह।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥ १६॥

पूषन्=हे भक्तोंका पोषण करनेवाले; **एकर्षे**=हे मुख्य ज्ञानस्वरूप; **यम**= हे सबके नियन्ता; **सूर्य**=हे भक्तों या ज्ञानियों (सूरियों) के परम लक्ष्यरूप; **प्राजापत्य**=हे प्रजापतिके प्रिय; **रश्मीन्**=इन रश्मियोंको; **व्यूह**=एकत्र कीजिये या हटा लीजिये; **तेजः**=इस तेजको; **समूह**=समेट लीजिये या अपने तेजमें मिला लीजिये; **यत्**=जो; **ते**=आपका; **कल्याणतमम्**=अतिशय कल्याणमय;

रूपम्=दिव्य स्वरूप है; **तत्**=उस; **ते**=आपके दिव्य स्वरूपको; **पश्यामि**=मैं आपकी कृपासे ध्यानके द्वारा देख रहा हूँ; **यः**=जो; **असौ**=वह (सूर्यका आत्मा) है; **असौ**=वह; **पुरुषः**=परम पुरुष (आपका ही स्वरूप है); **अहम्**=मैं (भी); **सः अस्मि**=वही हूँ ॥ १६ ॥

व्याख्या—भगवन्! आप अपनी सहज कृपासे भक्तोंके भक्ति-साधनमें दृष्टि प्रदान करके उनका पोषण करनेवाले हैं; आप समस्त ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, परम ज्ञानस्वरूप तथा अपने भक्तोंको अपने स्वरूपका यथार्थ ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं (गीता १०। ११); आप सबका यथायोग्य नियमन, नियन्त्रण और शासन करनेवाले हैं; आप ही भक्तों या ज्ञानी महापुरुषोंके लक्ष्य हैं और अविज्ञेय होनेपर भी अपने भक्तवत्सल स्वभावके कारण भक्तिके द्वारा उनके जाननेमें आ जाते हैं; आप प्रजापतिके भी प्रिय हैं। हे प्रभो! इस सूर्यमण्डलकी तप्त रश्मियोंको एकत्र करके अपनेमें लुप्त कर लीजिये। इसके उग्र तेजको समेटकर अपनेमें मिला लीजिये और मुझे अपने दिव्यस्वरूपके प्रत्यक्ष दर्शन कराइये। अभी तो मैं आपकी कृपासे आपके सौन्दर्य-माधुर्य-निधि दिव्य परम कल्याणमय सच्चिदानन्दस्वरूपका ध्यान-दृष्टिसे दर्शन कर रहा हूँ; साथ ही बुद्धिके द्वारा समझ भी रहा हूँ कि जो आप परम पुरुष इस सूर्यके और समस्त विश्वके आत्मा हैं, वही मेरे भी आत्मा हैं; अतः मैं भी वही हूँ॥ १६ ॥

सम्बन्ध—*ध्यानके द्वारा भगवान्‌के दिव्य मङ्गलमय स्वरूपके दर्शन करता हुआ साधक अब भगवान्‌की साक्षात् सेवामें पहुँचनेके लिये व्यग्र हो रहा है और शरीरका त्याग करते समय सूक्ष्म तथा स्थूल शरीरके सर्वथा विघटनकी भावना करता हुआ भगवान्‌से प्रार्थना करता है—*

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तँ शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर कृतँ स्मर क्रतो स्मर कृतँ स्मर ॥ १७ ॥

अथ=अब; **वायुः**=ये प्राण और इन्द्रियाँ; **अमृतम्**=अविनाशी; **अनिलम्**=समष्टि वायु-तत्त्वमें; **(प्रविशतु)**=प्रविष्ट हो जायँ; **इदम्**=यह;

शरीरम्=स्थूल शरीर; **भस्मान्तम्**=अग्निमें जलकर भस्मरूप; **(भूयात्)**=हो जाय; **ॐ**=हे सच्चिदानन्दघन; **क्रतो**=यज्ञमय भगवन्; **स्मर**=(आप मुझ भक्तको) स्मरण करें; **कृतम्**=मेरे द्वारा किये हुए कर्मोंका; **स्मर**=स्मरण करें; **क्रतो**=हे यज्ञमय भगवन्; **स्मर**=(आप मुझ भक्तको) स्मरण करें; **कृतम्**=(मेरे) कर्मोंको; **स्मर**=स्मरण करें॥ १७॥

व्याख्या—परमधामका यात्री वह साधक अपने प्राण, इन्द्रिय और शरीरको अपनेसे सर्वथा भिन्न समझकर उन सबको उनके अपने-अपने उपादान तत्त्वमें सदाके लिये विलीन करना एवं सूक्ष्म और स्थूल शरीरका सर्वथा विघटन करना चाहता है। इसलिये कहता है कि प्राणादि समष्टिवायु आदिमें प्रविष्ट हो जायँ और स्थूल शरीर जलकर भस्म हो जाय। फिर वह अपने आराध्य देव परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीभगवान्से प्रार्थना करता है कि 'हे यज्ञमय विष्णु—सच्चिदानन्द विज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप अपने निजजन मुझको और मेरे कर्मोंको स्मरण कीजिये। आप स्वभावसे ही मेरा और मेरे द्वारा बने हुए भक्तिरूप कार्योंका स्मरण करेंगे; क्योंकि आपने कहा है, **'अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्'** मैं अपने भक्तका स्मरण करता हूँ और उसे परम गतिमें पहुँचा देता हूँ, अपनी सेवामें स्वीकार कर लेता हूँ, क्योंकि यही सर्वश्रेष्ठ गति है।'

इसी अभिप्रायसे भक्त यहाँ दूसरी बार फिर कहता है कि 'भगवन्! आप मेरा और मेरे कर्मोंका स्मरण कीजिये। अन्तकालमें मैं आपकी स्मृतिमें आ गया तो फिर निश्चय ही आपकी सेवामें शीघ्र पहुँच जाऊँगा॥ १७॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार अपने आराध्य देव परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान्से प्रार्थना करके अब साधक अपुनरावर्ती अर्चि आदि मार्गके द्वारा परम धाममें जाते समय उस मार्गके अग्नि-अभिमानी देवतासे प्रार्थना करता है—*

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम*॥ १८॥

---

* यजुर्वेद ५। ३६। १७। ४३,४०। १६ और ऋग्वेद १। १८९। १ में भी यही मन्त्र है।

अग्ने=हे अग्निके अधिष्ठातृ देवता !; **अस्मान्**=हमें; **राये**=परम धनरूप परमेश्वरकी सेवामें पहुँचानेके लिये; **सुपथा**=सुन्दर शुभ (उत्तरायण) मार्गसे; **नय**=(आप) ले चलिये; **देव**=हे देव; (आप हमारे) **विश्वानि**=सम्पूर्ण; **वयुनानि**=कर्मोंको; **विद्वान्**=जाननेवाले हैं; (अतः) **अस्मत्**=हमारे; **जुहुराणम्**=इस मार्गके प्रतिबन्धक; **एनः**=(जो) पाप हों (उन सबको); **युयोधि**=(आप) दूर कर दीजिये; **ते**=आपको; **भूयिष्ठाम्**=बार-बार; **नमउक्तिम्**=नमस्कारके वचन; **विधेम**=(हम) कहते हैं—बार-बार नमस्कार करते हैं॥ १८॥

व्याख्या—साधक कहता है—हे अग्निदेवता ! मैं अब अपने परम प्रभु भगवान्‌की सेवामें पहुँचना और सदाके लिये उन्हींकी सेवामें रहना चाहता हूँ। आप शीघ्र ही मुझे परम सुन्दर मङ्गलमय उत्तरायणमार्गसे भगवान्‌के परमधाममें पहुँचा दीजिये। आप मेरे कर्मोंको जानते हैं। मैंने जीवनमें भगवान्‌की भक्ति की है और उनकी कृपासे इस समय भी मैं ध्याननेत्रोंसे उनके दिव्य स्वरूपके दर्शन और उनके नामोंका उच्चारण कर रहा हूँ। तथापि आपके ध्यानमें मेरा कोई ऐसा कर्म शेष हो, जो इस मार्गमें प्रतिबन्धकरूप हो, तो आप कृपा करके उसे नष्ट कर दीजिये। मैं आपको बार-बार विनयपूर्वक नमस्कार करता हूँ* ॥ १८॥

॥ यजुर्वेदीय ईशावास्योपनिषद् समाप्त ॥



---

* इस उपनिषद्‌का पंद्रहवाँ और सोलहवाँ मन्त्र सबके लिये मननीय है। इन मन्त्रोंके भावके अनुसार सबको भगवान्‌से दर्शन देनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। 'सत्यधर्माय दृष्टये' का यह भाव भी समझना चाहिये कि 'भगवन् ! आप अपने स्वरूपका वह आवरण—परदा हटा दीजिये, जिससे सत्यधर्मरूप आप परमेश्वरकी प्राप्ति तथा आपके मङ्गलमय श्रीविग्रहका दर्शन हो सके। इसी प्रकार सत्रहवें और अठारहवें मन्त्रके भावका भी प्रत्येक मनुष्यको विशेषतः मुमूर्षु-अवस्थामें अवश्य स्मरण करना चाहिये।

शान्तिपाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

इसका अर्थ इस ग्रन्थके प्रारम्भमें दिया जा चुका है।



इन मन्त्रोंके अनुसार अन्तकालमें भगवान्‌की प्रार्थना करनेसे मनुष्यमात्रका कल्याण हो सकता है। भगवान्‌ने स्वयं भी गीतामें कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(८।५)

मुमूर्षुमात्रके लाभके लिये इन दो मन्त्रोंका भावार्थ इस प्रकार है—हे परमात्मन्! मेरे ये इन्द्रिय और प्राण आदि अपने-अपने कारण तत्त्वोंमें लीन हो जायँ और मेरा यह स्थूल शरीर भी भस्म हो जाय। इनके प्रति मेरे मनमें किञ्चित् भी आसक्ति न रहे। हे यज्ञमय विष्णो! आप कृपा करके मेरा और मेरे कर्मोंका स्मरण करें। आपके स्मरण कर लेनेसे मैं और मेरे कर्म सब पवित्र हो जायँगे। फिर तो मैं अवश्य ही आपके चरणोंकी सेवामें पहुँच जाऊँगा ॥ १७ ॥ हे अग्निस्वरूप परमेश्वर! आप ही मेरे धन हैं—सर्वस्व हैं, अतः आपकी ही प्राप्तिके लिये आप मुझे उत्तम मार्गसे अपने चरणोंके समीप पहुँचाइये। मेरे जितने भी शुभाशुभ कर्म हैं, वे आपसे छिपे नहीं हैं, आप सबको जानते हैं, मैं उन कर्मोंके बलपर आपको नहीं पा सकता। आप स्वयं ही दया करके मुझे अपना लीजिये। आपकी प्राप्तिमें जो भी प्रतिबन्धक पाप हों, उन सबको आप दूर कर दें; मैं बारम्बार आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

केनोपनिषद्

यह उपनिषद् सामवेदके 'तलवकार ब्राह्मण' के अन्तर्गत है। तलवकारको जैमिनीय-उपनिषद् भी कहते हैं। 'तलवकार ब्राह्मण' के अस्तित्वके सम्बन्धमें कुछ पाश्चात्त्य विद्वानोंको संदेह हो गया था, परंतु डा० बर्नेलको कहींसे एक प्राचीन प्रति मिल गयी, तबसे वह संदेह जाता रहा। इस उपनिषद्में सबसे पहले 'केन' शब्द आया है, इसीसे इसका 'केनोपनिषद्' नाम पड़ गया। इसे 'तलवकार-उपनिषद्' और 'ब्राह्मणोपनिषद्' भी कहते हैं। तलवकार ब्राह्मणका यह नवम अध्याय है। इसके पूर्वके आठ अध्यायोंमें अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये विभिन्न कर्म और उपासनाओंका वर्णन है। इस उपनिषद्का प्रतिपाद्य विषय परब्रह्म-तत्त्व बहुत ही गहन है, अतएव उसको भलीभाँति समझानेके लिये गुरु-शिष्य-संवादके रूपमें तत्त्वका विवेचन किया गया है।

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ=हे परब्रह्म परमात्मन्; **मम**=मेरे; **अङ्गानि**=सम्पूर्ण अङ्ग; **वाक्**=वाणी; **प्राणः**=प्राण; **चक्षुः**=नेत्र; **श्रोत्रम्**=कान; **च**=और; **सर्वाणि**=सब;

इन्द्रियाणि=इन्द्रियाँ; **अथो**=तथा; **बलम्**=शक्ति; **आप्यायन्तु**=परिपुष्ट हों; **सर्वम्**=(यह जो) सर्वरूप; **औपनिषदम्**=उपनिषत्-प्रतिपादित; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **अहम्**=मैं; **ब्रह्म**=इस ब्रह्मको; **मा निराकुर्याम्**=अस्वीकार न करूँ; (और) **ब्रह्म**=ब्रह्म; **मा**=मुझको; **मा निराकरोत्**=परित्याग न करे; **अनिराकरणम्**=(उसके साथ मेरा) अटूट सम्बन्ध; **अस्तु**=हो; **मे**=मेरे साथ; **अनिराकरणम्**=(उसका) अटूट सम्बन्ध; **अस्तु**=हो; **उपनिषत्सु**=उपनिषदोंमें प्रतिपादित; **ये**=जो; **धर्माः**=धर्मसमूह हैं; **ते**=वे सब; **तदात्मनि**=उस परमात्मामें; **निरते**=लगे हुए; **मयि**=मुझमें; **सन्तु**=हों; **ते**=वे सब; **मयि**=मुझमें; **सन्तु**=हों। **ॐ**=हे परमात्मन्; **शान्तिः शान्तिः शान्तिः**=त्रिविध तापोंकी निवृत्ति हो।

व्याख्या—हे परमात्मन्! मेरे सारे अङ्ग, वाणी, नेत्र, श्रोत्र आदि सभी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणसमूह, शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा ओज—सब पुष्टि एवं वृद्धिको प्राप्त हों। उपनिषदोंमें सर्वरूप ब्रह्मका जो स्वरूप वर्णित है, उसे मैं कभी अस्वीकार न करूँ और वह ब्रह्म भी मेरा कभी परित्याग न करे। मुझे सदा अपनाये रखे। मेरे साथ ब्रह्मका और ब्रह्मके साथ मेरा नित्य सम्बन्ध बना रहे। उपनिषदोंमें जिन धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है, वे सारे धर्म, उपनिषदोंके एकमात्र लक्ष्य परब्रह्म परमात्मामें निरन्तर लगे हुए मुझ साधकमें सदा प्रकाशित रहें, मुझमें नित्य-निरन्तर बने रहें। और मेरे त्रिविध तापोंकी निवृत्ति हो।

प्रथम खण्ड

सम्बन्ध—*शिष्य गुरुदेवसे पूछता है—*

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥ १॥

केन=किसके द्वारा; **इषितम्**=सत्तास्फूर्ति पाकर; (और) **प्रेषितम्**=प्रेरित—संचालित होकर; (यह) **मनः**=मन (अन्तःकरण); **पतति**=अपने विषयोंमें गिरता है—उनतक पहुँचता है; **केन**=किसके द्वारा; **युक्तः**=नियुक्त होकर;

प्रथमः=अन्य सबसे श्रेष्ठ; **प्राणः**=प्राण; **प्रैति**=चलता है; **केन**=किसके द्वारा; **इषिताम्**=क्रियाशील की हुई; **इमाम्**=इस; **वाचम्**=वाणीको; **वदन्ति**=लोग बोलते हैं; **कः**=(और) कौन; **उ**=प्रसिद्ध; **देवः**=देव; **चक्षुः**=नेत्रेन्द्रिय (और); **श्रोत्रम्**=कर्णेन्द्रियको; **युनक्ति**=नियुक्त करता है (अपने-अपने विषयोंके अनुभवमें लगाता है) ॥ १ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें चार प्रश्न हैं। इनमें प्रकारान्तरसे यह पूछा गया है कि जडरूप अन्तःकरण, प्राण, वाणी आदि कर्मेन्द्रियों और चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियोंको अपना-अपना कार्य करनेकी योग्यता प्रदान करनेवाला और उन्हें अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त करनेवाला जो कोई एक सर्वशक्तिमान् चेतन है, वह कौन है? और कैसा है? ॥ १ ॥

सम्बन्ध—*इसके उत्तरमें गुरु कहते हैं*—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाच ँ स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ २ ॥

यत्=जो; **मनसः**=मनका; **मनः**=मन अर्थात् कारण है; **प्राणस्य**=प्राणका; **प्राणः**=प्राण है; **वाचः**=वाक् इन्द्रियका; **वाचम्**=वाक् है; **श्रोत्रस्य**=श्रोत्रेन्द्रियका; **श्रोत्रम्**=श्रोत्र है; **उ**=और; **चक्षुषः**=चक्षु इन्द्रियका; **चक्षुः**=चक्षु है; **सः**=वह; **ह**=ही (इन सबका प्रेरक परमात्मा है); **धीराः**=ज्ञानीजन (उसे जानकर); **अतिमुच्य**=जीवन्मुक्त होकर; **अस्मात्**=इस; **लोकात्**=लोकसे; **प्रेत्य**=जानेके बाद (मृत्युके अनन्तर); **अमृताः**=अमर (जन्म-मृत्युसे रहित); **भवन्ति**=हो जाते हैं ॥ २ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें गुरु शिष्यके प्रश्नोंका स्पष्ट उत्तर न देकर 'जो श्रोत्रका भी श्रोत्र है' इत्यादि शब्दोंके द्वारा संकेतसे समझा रहे हैं कि जो इन मन, प्राण और सम्पूर्ण इन्द्रियोंका—समस्त जगत्का परम कारण है, जिससे ये सब उत्पन्न हुए हैं, जिसकी शक्तिको पाकर ये सब अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ हो रहे हैं और जो इन सबको जाननेवाला है, वह परब्रह्म पुरुषोत्तम ही इन सबका प्रेरक है। उसे जानकर ज्ञानीजन जीवन्मुक्त होकर इस

लोकसे प्रयाण करनेके अनन्तर अमृतस्वरूप—विदेहमुक्त हो जाते हैं अर्थात् जन्म-मृत्युसे सदाके लिये छूट जाते हैं॥ २॥

सम्बन्ध—*वह मन, प्राण और इन्द्रियोंका प्रेरक ब्रह्म 'ऐसा' है—इस प्रकार स्पष्ट न कहकर संकेतसे ही क्यों समझाया ?—इस जिज्ञासापर पुनः गुरु कहते हैं—*

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे॥ ३॥

तत्र=वहाँ (उस ब्रह्मतक); **न**=न तो; **चक्षुः**=चक्षु-इन्द्रिय (आदि सब ज्ञानेन्द्रियाँ;) **गच्छति**=पहुँच सकती हैं; **न**=न; **वाक्**=वाक्-इन्द्रिय (आदि कर्मेन्द्रियाँ); **गच्छति**=पहुँच सकती हैं; (और) **नो**=न; **मनः**=मन (अन्तःकरण) ही; (अतः) **यथा**=जिस प्रकार; **एतत्**=इस (ब्रह्मके स्वरूप) को; **अनुशिष्यात्**=बतलाया जाय कि वह ऐसा है; **न विद्मः**=(इस बातको) न तो हम स्वयं अपनी बुद्धिसे जानते हैं; (और) **न विजानीमः**=न दूसरोंसे सुनकर ही जानते हैं; (क्योंकि) **तत्**=वह; **विदितात्**=जाने हुए (जाननेमें आनेवाले) पदार्थसमुदायसे; **अन्यत् एव**=भिन्न ही है; **अथो**=और; **अविदितात्**=(मन-इन्द्रियोंद्वारा) न जाने हुए (जाननेमें न आनेवाले) से (भी); **अधि**=ऊपर है; **इति**=यह; **पूर्वेषाम्**=अपने पूर्वाचार्योंके मुखसे; **शुश्रुम**=सुनते आये हैं; **ये**=जिन्होंने; **नः**=हमें; **तत्**=उस ब्रह्मका तत्त्व; **व्याचचक्षिरे**=भलीभाँति व्याख्या करके समझाया था॥ ३॥

व्याख्या—उन सच्चिदानन्दघन परब्रह्मको प्राकृत अन्तःकरण और इन्द्रियाँ नहीं जान सकतीं। ये वहाँतक पहुँच ही नहीं पातीं। उस अलौकिक दिव्य तत्त्वमें इनका प्रवेश ही नहीं हो सकता। बल्कि इनमें जो चेतना और क्रिया प्रतीत होती है, यह उसी ब्रह्मकी प्रेरणासे और उसीकी शक्तिसे होती है। ऐसी अवस्थामें मन-इन्द्रियोंके द्वारा कोई कैसे बतलाये कि वह ब्रह्म 'ऐसा है'। इस प्रकार ब्रह्मतत्त्वके उपदेशका कोई तरीका न तो हमने किसीके भी द्वारा समझा है और न हम स्वयं अपनी बुद्धिसे ही विचारके द्वारा समझ रहे हैं। हमने तो

जिन महापुरुषोंसे इस गूढ़ तत्त्वका उपदेश प्राप्त किया है, उनसे यही सुना है कि वह परब्रह्म परमेश्वर जड-चेतन दोनोंसे ही भिन्न है—जाननेमें आनेवाले सम्पूर्ण दृश्य जड-वर्ग (क्षर) से तो वह सर्वथा भिन्न है और इस जड-वर्गको जाननेवाले परंतु स्वयं जाननेमें न आनेवाले जीवात्मा (अक्षर) से भी उत्तम है। ऐसी स्थितिमें उसके स्वरूपतत्त्वको वाणीके द्वारा व्यक्त करना कदापि सम्भव नहीं है। इसीसे उसको समझानेके लिये संकेतका ही आश्रय लेना पड़ता है [गीता १५। १८] ॥ ३ ॥

सम्बन्ध—*अब उसी ब्रह्मको प्रश्नोंके अनुसार पुनः पाँच मन्त्रोंमें समझाते हैं—*

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ४ ॥

यत्=जो; **वाचा**=वाणीके द्वारा; **अनभ्युदितम्**=नहीं बतलाया गया है; [**अपि तु**=बल्कि;] **येन**=जिससे; **वाक्**=वाणी; **अभ्युद्यते**=बोली जाती है अर्थात् जिसकी शक्तिसे वक्ता बोलनेमें समर्थ होता है; **तत्**=उसको; **एव**=ही; **त्वम्**=तू; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **विद्धि**=जान; **इदम् यत्**=वाणीके द्वारा बतानेमें आनेवाले जिस तत्त्वकी; **उपासते**=(लोग) उपासना करते हैं; **इदम्**=यह; **न**=ब्रह्म नहीं है ॥ ४ ॥

व्याख्या—वाणीके द्वारा जो कुछ भी व्यक्त किया जा सकता है तथा प्राकृत वाणीसे बतलाये हुए जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है। ब्रह्मतत्त्व वाणीसे सर्वथा अतीत है। उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिसकी शक्तिके किसी अंशसे वाणीमें प्रकाशित होनेकी—बोलनेकी शक्ति आयी है, जो वाणीका भी ज्ञाता, प्रेरक और प्रवर्तक है, वह ब्रह्म है। इस मन्त्रमें 'जिसकी प्रेरणासे वाणी बोली जाती है, वह कौन है ?' इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है ॥ ४ ॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥

यत्=जिसको; (कोई भी) **मनसा**=मनसे (अन्तःकरणके द्वारा);

न=नहीं; **मनुते**=समझ सकता; [**अपि तु**=बल्कि;] **येन**=जिससे; **मनः**=मन; **मतम्**=(मनुष्यका) जाना हुआ हो जाता है; **आहुः**=ऐसा कहते हैं; **तत्**=उसको; **एव**=ही; **त्वम्**=तू; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **विद्धि**=जान; **इदम् यत्**=मन और बुद्धिके द्वारा जाननेमें आनेवाले जिस तत्त्वकी; **उपासते**=(लोग) उपासना करते हैं; **इदम्**=यह; **न**=ब्रह्म नहीं है ॥ ५ ॥

व्याख्या—बुद्धि और मनका जो कुछ भी विषय है, जो इनके द्वारा जाननेमें आ सकता है तथा प्राकृत मन-बुद्धिसे जाने हुए जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है। परब्रह्म परमेश्वर मन और बुद्धिसे सर्वथा अतीत है। इसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो मन-बुद्धिका ज्ञाता, उनको मनन और निश्चय करनेकी शक्ति देनेवाला तथा मनन और निश्चय करनेमें नियुक्त करनेवाला है तथा जिसकी शक्तिके किसी अंशसे बुद्धिमें निश्चय करनेकी और मनमें मनन करनेकी सामर्थ्य आयी है, वह ब्रह्म है। इस मन्त्रमें 'जिसकी शक्ति और प्रेरणाको पाकर मन अपने ज्ञेय पदार्थोंको जानता है, वह कौन है ?' इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है ॥ ५ ॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ६ ॥

यत्=जिसको (कोई भी); **चक्षुषा**=चक्षुके द्वारा; **न**=नहीं; **पश्यति**=देख सकता; [**अपि तु**=बल्कि;] **येन**=जिससे; **चक्षूंषि**=चक्षु; (अपने विषयोंको) **पश्यति**=देखता है; **तत्**=उसको; **एव**=ही; **त्वम्**=तू; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **विद्धि**=जान; **इदम् यत्**=चक्षुके द्वारा देखनेमें आनेवाले जिस दृश्यवर्गकी; **उपासते**=(लोग) उपासना करते हैं; **इदम्**=यह; **न**=ब्रह्म नहीं है ॥ ६ ॥

व्याख्या—चक्षुका जो कुछ भी विषय है, जो इसके द्वारा देखने-जाननेमें आ सकता है तथा प्राकृत आँखोंसे देखे जानेवाले जिस पदार्थसमूहकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक रूप नहीं है। परब्रह्म परमेश्वर चक्षु आदि इन्द्रियोंसे सर्वथा अतीत है। उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिसकी शक्ति और प्रेरणासे चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ

अपने-अपने विषयको प्रत्यक्ष करनेमें समर्थ होती हैं, जो इनको जाननेवाला और इन्हें अपने विषयोंको जाननेमें प्रवृत्त करनेवाला है तथा जिसकी शक्तिके किसी अंशका यह प्रभाव है वह ब्रह्म है। इस मन्त्रमें 'जिसकी शक्ति और प्रेरणासे चक्षु अपने विषयोंको देखता है, वह कौन है?' इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है॥ ६॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदँ् श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ७॥

यत्=जिसको (कोई भी); **श्रोत्रेण**=श्रोत्रके द्वारा; **न**=नहीं; **शृणोति**=सुन सकता; **[अपि तु**=बल्कि;] **येन**=जिससे; **इदम्**=यह; **श्रोत्रम्**=श्रोत्र-इन्द्रिय; **श्रुतम्**=सुनी हुई है; **तत्**=उसको; **एव**=ही; **त्वम्**=तू; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **विद्धि**=जान; **इदम् यत्**=श्रोत्र-इन्द्रियके द्वारा जाननेमें आनेवाले जिस तत्त्वकी; **उपासते**=(लोग) उपासना करते हैं; **इदम्**=यह; **न**=ब्रह्म नहीं है॥ ७॥

व्याख्या—जो कुछ भी सुननेमें आनेवाला पदार्थ है तथा प्राकृत कानोंसे सुने जानेवाले जिस वस्तु-समुदायकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है। परब्रह्म परमेश्वर श्रोत्रेन्द्रियसे सर्वथा अतीत है। उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो श्रोत्र-इन्द्रियका ज्ञाता, प्रेरक और उसमें सुननेकी शक्ति देनेवाला है तथा जिसकी शक्तिके किसी अंशसे श्रोत्र-इन्द्रियमें शब्दोंको ग्रहण करनेकी सामर्थ्य आयी है, वह ब्रह्म है। इस मन्त्रमें 'जिसकी शक्ति और प्रेरणासे श्रोत्र अपने विषयोंको सुननेमें प्रवृत्त होता है, वह कौन है?' इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है॥ ७॥

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ८॥

यत्=जो; **प्राणेन**=प्राणके द्वारा; **न प्राणिति**=चेष्टायुक्त नहीं होता; **[अपि तु**=बल्कि;] **येन**=जिससे; **प्राणः**=प्राण; **प्रणीयते**=चेष्टायुक्त होता है; **तत्**=उसको; **एव**=ही; **त्वम्**=तू; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **विद्धि**=जान; **इदम् यत्**=प्राणोंकी

शक्तिसे चेष्टायुक्त दीखनेवाले जिस तत्त्व-समुदायकी; **उपासते**=(लोग) उपासना करते हैं; **इदम्**=यह; **न**=ब्रह्म नहीं है ॥ ८ ॥

व्याख्या—प्राणके द्वारा जो कोई भी चेष्टायुक्त की जानेवाली वस्तु है, तथा प्राकृत प्राणसे अनुप्राणित जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है। परब्रह्म परमेश्वर उससे सर्वथा अतीत है। उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो प्राणका ज्ञाता, प्रेरक और उसमें शक्ति देनेवाला है, जिसकी शक्तिके किसी अंशको प्राप्त करके और जिसकी प्रेरणासे यह प्रधान प्राण सबको चेष्टायुक्त करनेमें समर्थ होता है, वही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ब्रह्म है। इस मन्त्रमें 'जिसकी प्रेरणासे प्राण विचरता है, वह कौन है ?' इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है।

सारांश यह कि प्राकृत मन तथा इन्द्रियोंसे जिन विषयोंकी उपलब्धि होती है, वे सभी प्राकृत होते हैं; अतएव उनको परब्रह्म परमेश्वर परात्पर पुरुषोत्तमका वास्तविक स्वरूप नहीं माना जा सकता। इसलिये उनकी उपासना भी परब्रह्म परमेश्वरकी उपासना नहीं है। मन-बुद्धि आदिसे अतीत परब्रह्म परमेश्वरके स्वरूपको सांकेतिक भाषामें समझानेके लिये ही यहाँ गुरुने इन सबके ज्ञाता, शक्तिप्रदाता, स्वामी, प्रेरक, प्रवर्तक, सर्वशक्तिमान्, नित्य, अप्राकृत परम तत्त्वको ब्रह्म बतलाया है ॥ ८ ॥

प्रथम खण्ड समाप्त ॥ १ ॥



द्वितीय खण्ड

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि
नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु
मीमाँस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥ १ ॥

यदि=यदि; **त्वम्**=तू; **इति**=यह; **मन्यसे**=मानता है (कि); **सुवेद**=(मैं

****

ब्रह्मको) भलीभाँति जान गया हूँ; **अपि**=तो; **नूनम्**=निश्चय ही; **ब्रह्मणः**=ब्रह्मका; **रूपम्**=स्वरूप; **दभ्रम्**=थोड़ा-सा; **एव**=ही; (तू) **वेत्थ**=जानता है; (क्योंकि) **अस्य**=इस (परब्रह्म परमेश्वर) का; **यत्**=जो (आंशिक) स्वरूप; **त्वम्**=तू है; (और) **अस्य**=इसका; **यत्**=जो (आंशिक) स्वरूप; **देवेषु**=देवताओंमें है; [**तत् अल्पम् एव**=वह सब मिलकर भी अल्प ही है;] **अथ नु**=इसीलिये; **मन्ये**=मैं मानता हूँ कि; **ते विदितम्**=तेरा जाना हुआ (स्वरूप); **मीमांस्यम् एव**=निस्संदेह विचारणीय है ॥ १ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें गुरु अपने शिष्यको सावधान करते हुए कहते हैं कि 'हमारे द्वारा संकेतसे बतलाये हुए ब्रह्मतत्त्वको सुनकर यदि तू ऐसा मानता है कि मैं उस ब्रह्मको भलीभाँति जान गया हूँ तो यह निश्चित है कि तूने ब्रह्मके स्वरूपको बहुत थोड़ा जाना है; क्योंकि उस परब्रह्मका अंशभूत जो जीवात्मा है, उसीको अथवा समस्त देवताओंमें—यानी मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदिमें जो ब्रह्मका अंश है, जिससे वे अपना काम करनेमें समर्थ हो रहे हैं, उसको यदि तू ब्रह्म समझता है तो तेरा यह समझना यथार्थ नहीं है। ब्रह्म इतना ही नहीं है। इस जीवात्माको और समस्त विश्व-ब्रह्माण्डमें व्याप्त जो ब्रह्मकी शक्ति है, उस सबको मिलाकर भी देखा जाय तो वह ब्रह्मका एक अंश ही है। अतएव तेरा समझा हुआ यह ब्रह्मतत्त्व तेरे लिये पुनः विचारणीय है, ऐसा मैं मानता हूँ' ॥ १ ॥

सम्बन्ध—*गुरुदेवके उपदेशपर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेके अनन्तर शिष्य उनके सामने अपना विचार प्रकट करता है—*

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥ २ ॥

अहम्=मैं; **सुवेद**=ब्रह्मको भलीभाँति जान गया हूँ; **इति न मन्ये**=यों नहीं मानता; (और) **नो**=न; **इति**=ऐसा (ही मानता हूँ कि); **न वेद**=नहीं जानता; (क्योंकि) **वेद च**=जानता भी हूँ; (किंतु यह जानना विलक्षण है) **नः**=हम शिष्योंमेंसे; **यः**=जो कोई भी; **तत्**=उस ब्रह्मको; **वेद**=जानता है; **तत्**=(वही)

मेरे उक्त वचनके अभिप्रायको; **च**=भी; **वेद**=जानता है; (कि) **वेद**=मैं जानता हूँ; (और) **न वेद**=नहीं जानता; **इति**=ये दोनों ही; **नो**=नहीं हैं ॥ २ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें शिष्यने अपने गुरुदेवके प्रति संकेतसे अपना अनुभव इस प्रकार प्रकट किया है कि ''उस ब्रह्मको मैं भलीभाँति जानता हूँ, यह मैं नहीं मानता और न यह ही मानता हूँ कि मैं उसे नहीं जानता; क्योंकि मैं जानता भी हूँ। तथापि मेरा यह जानना वैसा नहीं है, जैसा कि किसी ज्ञाताका किसी ज्ञेय वस्तुको जानना है। यह उससे सर्वथा विलक्षण और अलौकिक है। इसलिये मैं जो यह कह रहा हूँ कि 'मैं उसे नहीं जानता—ऐसा भी नहीं और जानता हूँ—ऐसा भी नहीं; तो भी मैं उसे जानता हूँ।' मेरे इस कथनके रहस्यको हम शिष्योंमेंसे वही ठीक समझ सकता है, जो उस ब्रह्मको जानता है'' ॥ २ ॥

सम्बन्ध—*अब श्रुति स्वयं उपर्युक्त गुरु-शिष्य-संवादका निष्कर्ष कहती है—*

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ ३ ॥

यस्य अमतम्=जिसका यह मानना है कि ब्रह्म जाननेमें नहीं आता; **तस्य**=उसका; **मतम्**=(तो वह) जाना हुआ है; (और) **यस्य**=जिसका; **मतम्**=यह मानना है कि ब्रह्म मेरा जाना हुआ है; **सः**=वह; **न**=नहीं; **वेद**=जानता; (क्योंकि) **विजानताम्**=जाननेका अभिमान रखनेवालोंके लिये; **अविज्ञातम्**=(वह ब्रह्मतत्त्व) जाना हुआ नहीं है; (और) **अविजानताम्**=जिनमें ज्ञातापनका अभिमान नहीं है, उनका; **विज्ञातम्**=(वह ब्रह्मतत्त्व) जाना हुआ है अर्थात् उनके लिये वह अपरोक्ष है ॥ ३ ॥

व्याख्या—जो महापुरुष परब्रह्म परमेश्वरका साक्षात् कर लेते हैं, उनमें किञ्चिन्मात्र भी ऐसा अभिमान नहीं रह जाता कि हमने परमेश्वरको जान लिया है। वे परमात्माके अनन्त असीम महिमा-महार्णवमें निमग्न हुए यही समझते कि परमात्मा स्वयं ही अपनेको जानते हैं। दूसरा कोई भी ऐसा नहीं है, जो उनका पार पा सके। भला, असीमकी सीमा ससीम कैसे पा सकता है?

अतएव जो यह मानता है कि मैंने ब्रह्मको जान लिया है, मैं ज्ञानी हूँ, परमेश्वर मेरे ज्ञेय हैं, वह वस्तुतः सर्वथा भ्रममें है; क्योंकि ब्रह्म इस प्रकार ज्ञानका विषय नहीं है। जितने भी ज्ञानके साधन हैं, उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं जो ब्रह्मतक पहुँच सके। अतएव इस प्रकारके जाननेवालोंके लिये परमात्मा सदा अज्ञात हैं; जबतक जाननेका अभिमान रहता है, तबतक परमेश्वरका साक्षात्कार नहीं होता। परमेश्वरका साक्षात्कार उन्हीं भाग्यवान् महापुरुषोंको होता है, जिनमें जाननेका अभिमान किञ्चित् भी नहीं रह गया है ॥ ३ ॥

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥ ४ ॥

प्रतिबोधविदितम्=उपर्युक्त प्रतिबोध (संकेत) से उत्पन्न ज्ञान ही; **मतम्**=वास्तविक ज्ञान है; **हि**=क्योंकि (इससे); **अमृतत्वम्**=अमृतस्वरूप परमात्माको; **विन्दते**=(मनुष्य) प्राप्त करता है; **आत्मना**=अन्तर्यामी परमात्मासे; **वीर्यम्**=परमात्माको जाननेकी शक्ति (ज्ञान); **विन्दते**=प्राप्त करता है; (और उस) **विद्यया**=विद्या—ज्ञानसे; **अमृतम्**=अमृतरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमको; **विन्दते**=प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

व्याख्या—उपर्युक्त वर्णनमें परमात्माके जिस स्वरूपका लक्ष्य कराया गया था उसको भलीभाँति समझ लेना ही वास्तविक ज्ञान है और इसी ज्ञानसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। परमात्माका ज्ञान करानेकी यह जो ज्ञानरूपी शक्ति है, यह मनुष्यको अन्तर्यामी परमात्मासे ही मिलती है। मन्त्रमें विद्यासे अमृत-रूप परब्रह्मकी प्राप्ति होती है, यह इसीलिये कहा गया है कि जिससे मनुष्यमें परब्रह्म पुरुषोत्तमके यथार्थ स्वरूपको जाननेके लिये रुचि और उत्साहकी वृद्धि हो ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*अब उस ब्रह्मतत्त्वको इसी जन्ममें जान लेना अत्यन्त आवश्यक है—यह बतलाकर इस प्रकरणका उपसंहार किया जाता है—*

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ ५ ॥

****

चेत्=यदि; **इह**=इस मनुष्य-शरीरमें; **अवेदीत्**=(परब्रह्मको) जान लिया; **अथ**=तब तो; **सत्यम्**=बहुत कुशल; **अस्ति**=है; **चेत्**=यदि; **इह**=इस शरीरके रहते-रहते; **न अवेदीत्**=(उसे) नहीं जान पाया (तो); **महती**=महान्; **विनष्टिः**=विनाश है; (यही सोचकर) **धीराः**=बुद्धिमान् पुरुष; **भूतेषु भूतेषु**=प्राणी-प्राणीमें (प्राणिमात्रमें) **विचित्य**=(परब्रह्म पुरुषोत्तमको) समझकर; **अस्मात्**=इस; **लोकात्**=लोकसे; **प्रेत्य**=प्रयाण करके; **अमृताः**=अमर; **भवन्ति**=हो जाते हैं॥ ५॥

व्याख्या—मानव-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है; इसे पाकर जो मनुष्य परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें तत्परताके साथ नहीं लग जाता, वह बहुत बड़ी भूल करता है। अतएव श्रुति कहती है कि 'जबतक यह दुर्लभ मानव-शरीर विद्यमान है, भगवत्कृपासे प्राप्त साधन-सामग्री उपलब्ध है, तभीतक शीघ्र-से-शीघ्र परमात्माको जान लिया जाय तो सब प्रकारसे कुशल है—मानव-जन्मकी परम सार्थकता है। यदि यह अवसर हाथसे निकल गया तो फिर महान् विनाश हो जायगा—बार-बार मृत्युरूप संसारके प्रवाहमें बहना पड़ेगा। फिर, रो-रोकर पश्चात्ताप करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रह जायगा। संसारके त्रिविध तापों और विविध शूलोंसे बचनेका यही एक परम साधन है कि जीव मानव-जन्ममें दक्षताके साथ साधन-परायण होकर अपने जीवनको सदाके लिये सार्थक कर ले। मनुष्य-जन्मके सिवा जितनी और योनियाँ हैं, सभी केवल कर्मोंका फल भोगनेके लिये ही मिलती हैं। उनमें जीव परमात्माको प्राप्त करनेका कोई साधन नहीं कर सकता। बुद्धिमान् पुरुष इस बातको समझ लेते हैं और इसीसे वे प्रत्येक जातिके प्रत्येक प्राणीमें परमात्माका साक्षात्कार करते हुए सदाके लिये जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटकर अमर हो जाते हैं॥ ५॥

द्वितीय खण्ड समाप्त ॥ २ ॥



तृतीय खण्ड

सम्बन्ध—*प्रथम प्रकरणमें ब्रह्मका स्वरूप-तत्त्व समझानेके लिये उसकी शक्तिका सांकेतिक भाषामें विभिन्न प्रकारसे दिग्दर्शन कराया गया। द्वितीय प्रकरणमें ब्रह्मज्ञानकी विलक्षणता बतलानेके लिये यह कहा गया कि प्रथम प्रकरणके वर्णनसे आपाततः ब्रह्मका जैसा स्वरूप समझमें आता है, वस्तुतः उसका पूर्णस्वरूप उतना ही नहीं है। वह तो उसकी महिमाका अंशमात्र है। जीवात्मा, मन, प्राण, इन्द्रिय आदि तथा उनके देवता—सभी उसीसे अनुप्राणित, प्रेरित और शक्तिमान् होकर कार्यक्षम होते हैं। अब इस तीसरे प्रकरणमें दृष्टान्तके द्वारा यह समझाया जाता है कि विश्वमें जो कोई भी प्राणी या पदार्थ शक्तिमान्, सुन्दर और प्रिय प्रतीत होते हैं, उनके जीवनमें जो सफलता दीखती है, वह सभी उस परब्रह्म परमेश्वरके एक अंशकी ही महिमा है (गीता १० । ४१)। इनपर यदि कोई अभिमान करता है तो वह बहुत बड़ी भूल करता है—*

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥ १ ॥

ब्रह्म=परब्रह्म परमेश्वरने; **ह**=ही; **देवेभ्यः**=देवताओंके लिये (उनको निमित्त बनाकर); **विजिग्ये**=(असुरोंपर) विजय प्राप्त की; **ह**=किंतु; **तस्य**=उस; **ब्रह्मणः**=परब्रह्म पुरुषोत्तमकी; **विजये**=विजयमें; **देवाः**=इन्द्रादि देवताओंने; **अमहीयन्त**=अपनेमें महत्त्वका अभिमान कर लिया; **ते**=वे; **इति**=यों; **ऐक्षन्त**=समझने लगे (कि); **अयम्**=यह; **अस्माकम् एव**=हमारी ही; **विजयः**=विजय है; (और) **अयम्**=यह; **अस्माकम् एव**=हमारी ही; **महिमा**=महिमा है ॥ १ ॥

व्याख्या—परब्रह्म पुरुषोत्तमने देवोंपर कृपा करके उन्हें शक्ति प्रदान की, जिससे उन्होंने असुरोंपर विजय प्राप्त कर ली। यह विजय वस्तुतः भगवान्‌की ही थी, देवता तो केवल निमित्तमात्र थे; परंतु इस ओर देवताओंका ध्यान नहीं गया और वे भगवान्‌की कृपाकी ओर लक्ष्य न करके भगवान्‌की महिमाको अपनी महिमा समझ बैठे और अभिमानवश यह मानने लगे कि

हम बड़े भारी शक्तिशाली हैं एवं हमने अपने ही बल-पौरुषसे असुरोंको पराजित किया है॥ १॥

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति ॥ २ ॥

ह तत्=प्रसिद्ध है कि उस परब्रह्मने; **एषाम्**=इन देवताओंके (अभिमानको); **विजज्ञौ**=जान लिया; (और कृपापूर्वक उनका अभिमान नष्ट करनेके लिये वह) **तेभ्यः**=उनके सामने; **ह**=ही; **प्रादुर्बभूव**=साकाररूपमें प्रकट हो गया; **तत्**=उसको (यक्षरूपमें प्रकट हुआ देखकर भी); **इदम्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **किम् इति**=कौन है, इस बातको; **न व्यजानत**= (देवताओंने) नहीं जाना॥ २॥

व्याख्या—देवताओंके मिथ्या अभिमानको करुणा-वरुणालय भगवान् समझ गये। भक्त-कल्याणकारी भगवान्‌ने सोचा कि यह अभिमान बना रहा तो इनका पतन हो जायगा। भक्त-सुहृद् भगवान् भक्तोंका पतन कैसे सह सकते थे। अतः देवताओंपर कृपा करके उनका दर्प चूर्ण करनेके लिये वे उनके सामने दिव्य साकार यक्षरूपमें प्रकट हो गये। देवता आश्चर्यचकित होकर उस अत्यन्त अद्भुत विशाल रूपको देखने और विचार करने लगे कि यह दिव्य यक्ष कौन है; पर वे उसको पहचान नहीं सके॥ २॥

तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद् विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति ॥ ३ ॥

ते=उन इन्द्रादि देवतओंने; **अग्निम्**=अग्निदेवसे; [**इति**=इस प्रकार;] **अब्रुवन्**=कहा; **जातवेदः**=हे जातवेदा; (आप जाकर) **एतत्**=इस बातको; **विजानीहि**=जानिये—इसका भलीभाँति पता लगाइये (कि); **इदम् यक्षम्**=यह दिव्य यक्ष; **किम् इति**=कौन है; **तथा इति**=(अग्निने कहा—) बहुत अच्छा !॥ ३॥

व्याख्या—देवता उस अति विचित्र महाकाय दिव्य यक्षको देखकर मन-ही-मन सहम-से गये और उसका परिचय जाननेके लिये व्यग्र हो उठे।

****

अग्निदेवता परम तेजस्वी हैं, वेदार्थके ज्ञाता हैं; समस्त जात-पदार्थोंका पता रखते हैं और सर्वज्ञ-से हैं। इसीसे उनका गौरवयुक्त नाम 'जातवेदा' है। देवताओंने इस कार्यके लिये अग्निको ही उपयुक्त समझा और उन्होंने कहा—'हे जातवेदा ! आप जाकर इस यक्षका पूरा पता लगाइये कि यह कौन है।' अग्निदेवताको अपनी बुद्धि-शक्तिका गर्व था। अतः उन्होंने कहा—'अच्छी बात है, अभी पता लगाता हूँ' ॥ ३ ॥

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ ४ ॥

तत्=उसके समीप; (अग्निदेव) **अभ्यद्रवत्**=दौड़कर गया; **तम्**=उस अग्निदेवसे; **अभ्यवदत्**=(उस दिव्य यक्षने) पूछा; **कः असि इति**=(कि तुम) कौन हो; **अब्रवीत्**=(अग्निने) यह कहा (कि); **अहम्**=मैं; **वै अग्निः**=प्रसिद्ध अग्निदेव; **अस्मि इति**=हूँ; (और) **अहम् वै**=मैं ही; **जातवेदाः**=जातवेदाके नामसे; **अस्मि इति**=प्रसिद्ध हूँ ॥ ४ ॥

व्याख्या—अग्निदेवताने सोचा, इसमें कौन बड़ी बात है; इसलिये वे तुरंत यक्षके समीप जा पहुँचे। उन्हें अपने समीप खड़ा देखकर यक्षने पूछा—आप कौन हैं ? अग्निने सोचा—मेरे तेजःपुञ्ज स्वरूपको सभी पहचानते हैं, इसने कैसे नहीं जाना; अतः उन्होंने तमककर उत्तर दिया—'मैं प्रसिद्ध अग्नि हूँ, मेरा ही गौरवमय और रहस्यपूर्ण नाम जातवेदा है' ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*तब यक्षरूपी ब्रह्मने अग्निसे पूछा*—

तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमिति। अपीदँसर्वं दहेयम्, यदिदं पृथिव्यामिति ॥ ५ ॥

तस्मिन् त्वयि=उक्त नामोंवाले तुझ अग्निमें; **किं वीर्यम्**=क्या सामर्थ्य है; **इति**=यह बता; (तब अग्निने यह उत्तर दिया कि) **अपि**=यदि (मैं चाहूँ तो); **पृथिव्याम्**=पृथ्वीमें; **यत् इदम्**=यह जो कुछ भी है; **इदम् सर्वम्**=इस सबको; **दहेयम् इति**=जलाकर भस्म कर दूँ ॥ ५ ॥

व्याख्या—अग्निकी गर्वोक्ति सुनकर ब्रह्मने अनजानकी भाँति कहा—

'अच्छा ! आप अग्निदेवता हैं और जातवेदा—सबका ज्ञान रखनेवाले भी आप ही हैं ? बड़ी अच्छी बात है, पर यह तो बताइये कि आपमें क्या शक्ति है; आप क्या कर सकते हैं ? इसपर अग्निने पुनः सगर्व उत्तर दिया—'मैं क्या कर सकता हूँ' इसे आप जानना चाहते हैं ? अरे, मैं चाहूँ तो इस सारे भूमण्डलमें जो कुछ भी देखनेमें आ रहा है, सबको जलाकर अभी राखका ढेर कर दूँ' ॥ ५ ॥

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति। तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते, नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति ॥ ६ ॥

(तब उस दिव्य यक्षने) **तस्मै**=उस अग्निदेवके सामने; **तृणम्**=एक तिनका; **निदधौ**=रख दिया; (और) **इति**=यह कहा कि; **एतत्**=इस तिनकेको; **दह**=जला दो; **सः**=वह (अग्नि); **सर्वजवेन**=पूर्ण शक्ति लगाकर; **तत् उपप्रेयाय**=उस तिनकेपर टूट पड़ा (परंतु); **तत्**=उसको; **दग्धुम्**=जलानेमें; **न एव शशाक**=किसी प्रकार समर्थ नहीं हुआ; **ततः**=(तब लज्जित होकर) वहाँसे; **निववृते**=लौट गया (और देवताओंसे बोला); **एतत्**=यह; **विज्ञातुम्**=जाननेमें; **न अशकम्**=मैं समर्थ नहीं हो सका (कि वस्तुतः); **एतत्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **यत् इति**=कौन है ॥ ६ ॥

व्याख्या—अग्निदेवताकी पुनः गर्वोक्ति सुनकर सबको सत्ताशक्ति देनेवाले यक्षरूपी परब्रह्म परमेश्वरने उनके आगे एक सूखा तिनका डालकर कहा—'आप तो सभीको जला सकते हैं; तनिक-सा बल लगाकर इस सूखे तृणको जला दीजिये।' अग्निदेवताने मानो इसको अपना अपमान समझा और वे सहज ही उस तृणके पास पहुँचे और उसे जलाना चाहा; जब नहीं जला तब उन्होंने उसे जलानेके लिये अपनी पूरी शक्ति लगा दी। पर उसको तनिक-सी आँच भी नहीं लगी। आँच लगती कैसे ? अग्निमें जो अग्नित्व है—दाहिका शक्ति है, वह तो शक्तिके मूलभण्डार परमात्मासे ही मिली हुई है। वे यदि उस शक्तिस्रोतको रोक दें तो फिर शक्ति कहाँसे आयेगी।

****

अग्निदेव इस बातको न समझकर ही डींग हाँक रहे थे। पर जब ब्रह्मने अपनी शक्तिको रोक लिया, सूखा तिनका नहीं जल सका, तब तो उनका सिर लज्जासे झुक गया और वे हतप्रतिज्ञ और हतप्रभ होकर चुपचाप देवताओंके पास लौट आये और बोले कि 'मैं तो भलीभाँति नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है' ॥ ६ ॥

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति तथेति ॥ ७ ॥

अथ=तब; **वायुम्**=वायुदेवतासे; **अब्रुवन्**=(देवताओंने) कहा; **वायो**=हे वायुदेव! (जाकर); **एतत्**=इस बातको; **विजानीहि**=आप जानिये—इसका भलीभाँति पता लगाइये (कि); **एतत्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **किम् इति**=कौन है; (वायुने कहा) **तथा इति**=बहुत अच्छा! ॥ ७ ॥

व्याख्या—जब अग्निदेव असफल होकर लौट आये, तब देवताओंने इस कार्यके लिये अप्रतिमशक्ति वायुदेवको चुना और उनसे कहा कि 'वायुदेव! आप जाकर इस यक्षका पूरा पता लगाइये कि यह कौन है।' वायुदेवको भी अपनी बुद्धि-शक्तिका गर्व था; अतः उन्होंने भी कहा—'अच्छी बात है, अभी पता लगाता हूँ' ॥ ७ ॥

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीति। वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥ ८ ॥

तत्=उसके समीप; **अभ्यद्रवत्**=(वायुदेवता) दौड़कर गया; **तम्**=उससे (भी); **अभ्यवदत्**=(उस दिव्य यक्षने) पूछा; **कः असि इति**=(कि तुम) कौन हो; **अब्रवीत्**=(तब वायुने) यह कहा (कि); **अहम्**=मैं; **वै वायुः**=प्रसिद्ध वायुदेव; **अस्मि इति**=हूँ; (और) **अहम् वै**=मैं ही; **मातरिश्वा**=मातरिश्वाके नामसे; **अस्मि इति**=प्रसिद्ध हूँ ॥ ८ ॥

व्याख्या—वायुदेवताने सोचा, 'अग्नि कहीं भूल कर गये होंगे; नहीं तो यक्षका परिचय जानना कौन बड़ी बात थी। अस्तु, इस सफलताका श्रेय मुझीको मिलेगा।' यह सोचकर वे तुरंत यक्षके समीप जा पहुँचे। उन्हें अपने

समीप खड़ा देखकर यक्षने पूछा—'आप कौन हैं? वायुने भी अपने गुण-गौरवके गर्वसे तमककर उत्तर दिया 'मैं प्रसिद्ध वायु हूँ, मेरा ही गौरवमय और रहस्यपूर्ण नाम मातरिश्वा है' ॥ ८ ॥

सम्बन्ध—*यक्षरूपी ब्रह्मने वायुसे पूछा*—

तस्मिँ्स्त्वयि किं वीर्यमिति ? अपीदँ् सर्वमाददीयम्, यदिदं पृथिव्यामिति ॥ ९ ॥

तस्मिन् त्वयि=उक्त नामोंवाले तुझ वायुमें; **किं वीर्यम्**=क्या सामर्थ्य है; **इति**=यह बता; (तब वायुने यह उत्तर दिया कि) **अपि**=यदि (मैं चाहूँ तो); **पृथिव्याम्**=पृथ्वीमें; **यत् इदम्**=यह जो कुछ भी है; **इदम् सर्वम्**=इस सबको; **आददीयम् इति**=उठा लूँ—आकाशमें उड़ा दूँ ॥ ९ ॥

व्याख्या—वायुकी भी वैसी ही गर्वोक्ति सुनकर ब्रह्मने इनसे भी वैसे ही अनजानकी भाँति कहा—'अच्छा! आप वायुदेवता हैं और मातरिश्वा—अन्तरिक्षमें बिना ही आधारके विचरण करनेवाले भी आप ही हैं? बड़ी अच्छी बात है! पर यह तो बताइये कि आपमें क्या शक्ति है—आप क्या कर सकते हैं? इसपर वायुने भी अग्निकी भाँति पुनः सगर्व उत्तर दिया कि 'मैं चाहूँ तो इस सारे भूमण्डलमें जो कुछ भी देखनेमें आ रहा है, सबको बिना आधारके उठा लूँ—उड़ा दूँ' ॥ ९ ॥

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति। तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते, नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति ॥ १० ॥

(तब उस दिव्य यक्षने) **तस्मै**=उस वायुदेवके सामने; **तृणम्**=एक तिनका; **निदधौ**=रख दिया; (और यह कहा कि) **एतत्**=इस तिनकेको; **आदत्स्व इति**=उठा लो—उड़ा दो; **सः**=वह (वायु); **सर्वजवेन**=पूर्ण शक्ति लगाकर; **तत् उपप्रेयाय**=उस तिनकेपर झपटा (परंतु); **तत्**=उसको; **आदातुम्**=उड़ानेमें; **न एव शशाक**=किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हुआ; **ततः**=(तब लज्जित होकर) वहाँसे; **निववृते**=लौट गया (और देवताओंसे

बोला) **एतत्**=यह; **विज्ञातुम्**=जाननेमें; **न अशकम्**=मैं समर्थ नहीं हो सका (कि वस्तुतः); **एतत्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **यत् इति**=कौन है ॥ १० ॥

व्याख्या—वायुदेवताकी भी पुनः वैसी ही गर्वोक्ति सुनकर सबको सत्ता-शक्ति देनेवाले परब्रह्म परमेश्वरने उनके आगे भी एक सूखा तिनका डालकर कहा—'आप तो सभीको उड़ा सकते हैं, तनिक-सा बल लगाकर इस सूखे तृणको उड़ा दीजिये।' वायुदेवताने भी मानो इसको अपना अपमान समझा और वे सहज ही उस तृणके पास पहुँचे, उसे उड़ाना चाहा; जब नहीं उड़ा तब उन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। परंतु शक्तिमान् परमात्माके द्वारा शक्ति रोक लिये जानेके कारण वे उसे तनिक-सा हिला भी नहीं सके और अग्निकी ही भाँति हतप्रतिज्ञ और हतप्रभ होकर लज्जासे सिर झुकाये वहाँसे लौट आये एवं देवताओंसे बोले कि 'मैं तो भलीभाँति नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है ?' ॥ १० ॥

अथेन्द्रमब्रुवन् मघवन्नेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति। तथेति। तदभ्यद्रवत्। तस्मात् तिरोदधे ॥ ११ ॥

अथ=तदनन्तर; **इन्द्रम्**=इन्द्रसे; **अब्रुवन्**=(देवताओंने) यह कहा; **मघवन्**=हे इन्द्रदेव!; **एतत्**=इस बातको; **विजानीहि**=आप जानिये—भलीभाँति पता लगाइये (कि); **एतत्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **किम् इति**=कौन है; (तब इन्द्रने कहा) **तथा इति**=बहुत अच्छा; **तत् अभ्यद्रवत्**=(और वे) उस यक्षकी ओर दौड़कर गये (परंतु वह दिव्य यक्ष); **तस्मात्**=उनके सामनेसे; **तिरोदधे**=अन्तर्धान हो गया ॥ ११ ॥

व्याख्या—जब अग्नि और वायु-सरीखे अप्रतिमशक्ति और बुद्धिसम्पन्न देवता असफल होकर लौट आये और उन्होंने कोई कारण भी नहीं बताया, तब देवताओंने विचार करके स्वयं देवराज इन्द्रको इस कार्यके लिये चुना और उन्होंने कहा—'हे महान् बलशाली देवराज ! अब आप ही जाकर पूरा पता लगाइये कि यह यक्ष कौन है। आपके सिवा अन्य किसीके इस काममें सफल होनेकी सम्भावना नहीं है।' इन्द्र 'बहुत अच्छा' कहकर तुरंत यक्षके पास गये;

पर उनके यहाँ पहुँचते ही वह उनके सामनेसे अन्तर्धान हो गया। इन्द्रमें इन देवताओंसे अधिक अभिमान था; इसलिये ब्रह्मने उनको वार्तालापका अवसर नहीं दिया। परंतु इस एक दोषके अतिरिक्त अन्य सब प्रकारसे इन्द्र अधिकारी थे, अतः उन्हें ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान कराना आवश्यक समझकर इसीकी व्यवस्थाके लिये वे स्वयं अन्तर्धान हो गये॥ ११ ॥

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमाँ-हैमवतीं ताँहोवाच किमेतद् यक्षमिति ॥ १२ ॥

सः=वे इन्द्र; **तस्मिन् एव**=उसी; **आकाशे**=आकाशप्रदेशमें (यक्षके स्थानपर ही); **बहुशोभमानाम्**=अतिशय सुन्दरी; **स्त्रियम्**=देवी; **हैमवतीम्**=हिमाचलकुमारी; **उमाम्**=उमाके पास; **आजगाम**=आ पहुँचे (और); **ताम्**=उनसे; **ह उवाच**=(सादर) यह बोले (देवि !); **एतत्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **किम् इति**=कौन था॥ १२ ॥

व्याख्या—यक्षके अन्तर्धान हो जानेपर इन्द्र वहीं खड़े रहे, अग्नि-वायुकी भाँति वहाँसे लौटे नहीं। इतनेहीमें उन्होंने देखा कि जहाँ दिव्य यक्ष था, ठीक उसी जगह अत्यन्त शोभामयी हिमाचलकुमारी उमादेवी प्रकट हो गयी हैं। उन्हें देखकर इन्द्र उनके पास चले गये। इन्द्रपर कृपा करके करुणामय परब्रह्म पुरुषोत्तमने ही उमारूपा साक्षात् ब्रह्मविद्याको प्रकट किया था। इन्द्रने भक्तिपूर्वक उनसे कहा—'भगवती ! आप सर्वज्ञशिरोमणि ईश्वर श्रीशङ्करकी स्वरूपा-शक्ति हैं। अतः आपको अवश्य ही सब बातोंका पता है। कृपापूर्वक मुझे बतलाइये कि यह दिव्य यक्ष, जो दर्शन देकर तुरंत ही छिप गया, वस्तुतः कौन है और किस हेतुसे यहाँ प्रकट हुआ था'॥ १२ ॥

तृतीय खण्ड समाप्त ॥ ३ ॥



चतुर्थ खण्ड

सा ब्रह्मेति होवाच। ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति, ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ १ ॥

सा=उस (भगवती उमादेवी) ने; **ह उवाच**=स्पष्ट उत्तर दिया कि; **ब्रह्म इति**=(वे तो) परब्रह्म परमात्मा हैं; **ब्रह्मणः वै**=उन परमात्माकी ही; **एतद्विजये**=इस विजयमें; **महीयध्वम् इति**=तुम अपनी महिमा मानने लगे थे; **ततः एव**=उमाके इस कथनसे ही; **ह**=निश्चयपूर्वक; **विदाञ्चकार**=(इन्द्रने) समझ लिया (कि); **ब्रह्म इति**=(यह) ब्रह्म है ॥ १ ॥

व्याख्या—देवराज इन्द्रके पूछनेपर भगवती उमादेवीने इन्द्रसे कहा कि 'तुम जिन दिव्य यक्षको देख रहे थे और जो इस समय अन्तर्धान हो गये हैं, वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। तुमलोगोंने जो असुरोंपर विजय प्राप्त की है, यह उन ब्रह्मकी शक्तिसे ही की है; अतएव वस्तुतः यह उन परब्रह्मकी ही विजय है, तुम तो इसमें निमित्तमात्र थे। परंतु तुमलोगोंने ब्रह्मकी इस विजयको अपनी विजय मान लिया और उनकी महिमाको अपनी महिमा समझने लगे।

यह तुम्हारा मिथ्याभिमान था और जिन परम कारुणिक परमात्माने तुमलोगोंपर कृपा करके असुरोंपर तुम्हें विजय प्रदान करायी, उन्हीं परमात्माने तुम्हारे मिथ्याभिमानका नाश करके तुम्हारा कल्याण करनेके लिये यक्षके रूपमें प्रकट होकर अग्नि और वायुका गर्व चूर्ण किया एवं तुम्हें वास्तविक ज्ञान देनेके लिये मुझे प्रेरित किया। अतएव तुम अपनी स्वतन्त्र शक्तिके सारे अभिमानका त्याग करके, जिन ब्रह्मकी महिमासे महिमान्वित और शक्तिमान् बने हो, उन्हींकी महिमा समझो। स्वप्नमें भी यह भावना मत करो कि ब्रह्मकी शक्तिके बिना अपनी स्वतन्त्र शक्तिसे कोई भी कुछ कर सकता है।' उमाके इस उत्तरसे देवताओंमें सबसे पहले इन्द्रको यह निश्चय हुआ कि यक्षके रूपमें स्वयं ब्रह्म ही उन लोगोंके सामने प्रकट हुए थे ॥ १ ॥

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २ ॥

तस्मात् वै=इसीलिये; **एते देवाः**=ये तीनों देवता; **यत्**=जो कि; **अग्निः**=अग्नि; **वायुः**=वायु (और); **इन्द्रः**=इन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हैं; **अन्यान्**=दूसरे (चन्द्रमा आदि); **देवान्**=देवोंकी अपेक्षा; **अतितराम् इव**=मानो अतिशय श्रेष्ठ हैं; **हि**=क्योंकि; **ते**=उन्होंने ही; **एनत् नेदिष्ठम्**=इन अत्यन्त प्रिय और समीपस्थ परमेश्वरको; **पस्पृशुः**=(दर्शनद्वारा) स्पर्श किया है; **ते हि**=(और) उन्होंने ही; **एनत्**=इनको; **प्रथमः**=सबसे पहले; **विदाञ्चकार**=जाना है (कि); **ब्रह्म इति**=ये साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं ॥ २ ॥

व्याख्या—समस्त देवताओंमें अग्नि, वायु और इन्द्रको ही परम श्रेष्ठ मानना चाहिये; क्योंकि उन्हीं तीनोंने ब्रह्मका संस्पर्श प्राप्त किया है। परब्रह्म परमात्माके दर्शनका, उनका परिचय प्राप्त करनेके प्रयत्नमें प्रवृत्त होनेका और उनके साथ वार्तालापका परम सौभाग्य उन्हींको प्राप्त हुआ और उन्होंने ही सबसे पहले इस सत्यको समझा कि हमलोगोंने जिनका दर्शन प्राप्त किया है, जिनसे वार्तालाप किया है और जिनकी शक्तिसे असुरोंपर विजय प्राप्त की है, वे ही साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं।

सारांश यह कि जिन सौभाग्यशाली महापुरुषको किसी भी कारणसे भगवान्‌के दिव्य संस्पर्शका सौभाग्य प्राप्त हो गया है, जो उनके दर्शन, स्पर्श और उनके साथ सदालाप करनेका सुअवसर पा चुके हैं, उनकी महिमा इस मन्त्रमें इन्द्रादि देवताओंका उदाहरण देकर की गयी है ॥ २ ॥

सम्बन्ध—*अब यह कहते हैं कि इन तीनों देवताओंमें भी अग्नि और वायुकी अपेक्षा देवराज इन्द्र श्रेष्ठ हैं—*

तस्माद् वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श, स ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ ३ ॥

तस्मात् वै=इसीलिये; **इन्द्रः**=इन्द्र; **अन्यान् देवान्**=दूसरे देवताओंकी अपेक्षा; **अतितराम् इव**=मानो अतिशय श्रेष्ठ है; **हि**=क्योंकि; **सः**=उसने;

एनत् नेदिष्ठम्=इन अत्यन्त प्रिय और समीपस्थ परमेश्वरको; **पस्पर्श**=(उमादेवीसे सुनकर सबसे पहले) मनके द्वारा स्पर्श किया; **स हि**=(और) उसीने; **एनत्**=इनको; **प्रथमः**=अन्यान्य देवताओंसे पहले; **विदाञ्चकार**=भलीभाँति जाना है (कि); **ब्रह्म इति**=ये साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं ॥ ३ ॥

व्याख्या—अग्नि तथा वायुने दिव्य यक्षके रूपमें ब्रह्मका दर्शन और उसके साथ वार्तालापका सौभाग्य तो प्राप्त किया था; परंतु उन्हें उसके स्वरूपका ज्ञान नहीं हुआ था। भगवती उमाके द्वारा सबसे पहले देवराज इन्द्रको सर्वशक्तिमान् परब्रह्म पुरुषोत्तमके तत्त्वका ज्ञान हुआ। तदनन्तर इन्द्रके बतलानेपर अग्नि और वायुको उनके स्वरूपका पता लगा और उसके बाद इनके द्वारा अन्य सब देवताओंने यह जाना कि हमें जो दिव्य यक्ष दिखलायी दे रहे थे, वे साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम ही हैं। इस प्रकार अन्यान्य देवताओंने केवल सुनकर जाना; परंतु उन्हें परब्रह्म पुरुषोत्तमके साथ न तो वार्तालाप करनेका सौभाग्य मिला और न उनके तत्त्वको समझनेका ही। अतएव उन सब देवताओंसे तो अग्नि, वायु और इन्द्र श्रेष्ठ हैं; क्योंकि इन तीनोंको ब्रह्मका दर्शन और तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हुई। परंतु इन्द्रने सबसे पहले उनके तत्त्वको समझा, इसलिये इन्द्र सबसे श्रेष्ठ माने गये ॥ ३ ॥

सम्बन्ध—*अब उपर्युक्त ब्रह्मतत्त्वको आधिदैविक दृष्टान्तके द्वारा संकेतसे समझाते हैं—*

तस्यैष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्युतदा इतीन्न्यमीमिषदा इत्यधिदैवतम् ॥ ४ ॥

तस्य=उस ब्रह्मका; **एषः**=यह; **आदेशः**=सांकेतिक उपदेश है; **यत्**=जो कि; **एतत्**=यह; **विद्युतः**=बिजलीका; **व्यद्युतत् आ**=चमकना-सा है; **इति**=इस प्रकार (क्षणस्थायी) है; **इत्**=तथा जो; **न्यमीमिषत् आ**=नेत्रोंका झपकना-सा है; **इति**=इस प्रकार; **अधिदैवतम्**=यह आधिदैविक उपदेश है ॥ ४ ॥

व्याख्या—जब साधकके हृदयमें ब्रह्मको साक्षात् करनेकी तीव्र

अभिलाषा जाग उठती है, तब भगवान् उसकी उत्कण्ठाको और भी तीव्रतम तथा उत्कट बनानेके लिये बिजलीके चमकने और आँखोंके झपकनेकी भाँति अपने स्वरूपकी क्षणिक झाँकी दिखलाकर छिप जाया करते हैं। पूर्वोक्त आख्यायिकामें इसी प्रकार इन्द्रके सामनेसे दिव्य यक्षके अन्तर्धान हो जानेकी बात आयी है। देवर्षि नारदको भी उनके पूर्वजन्ममें क्षणभरके लिये अपनी दिव्य झाँकी दिखलाकर भगवान् अन्तर्धान हो गये थे। यह कथा श्रीमद्भागवत (१।६।१९-२०) में आती है। जब साधकके नेत्रोंके सामने या उसके हृदय-देशमें पहले-पहले भगवान्के साकार या निराकार स्वरूपका दर्शन या अनुभव होता है, तब वह आनन्दाश्चर्यसे चकित-सा हो जाता है। इससे उसके हृदयमें अपने आराध्यदेवको नित्य-निरन्तर देखते रहने या अनुभव करते रहनेकी अनिवार्य और परम उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। फिर उसे क्षणभरके लिये भी इष्ट-साक्षात्कारके बिना शान्ति नहीं मिलती। यही बात इस मन्त्रमें आधिदैविक उदाहरणसे समझायी गयी है—ऐसा प्रतीत होता है। वस्तुतः यहाँ बड़ी ही गोपनीय रीतिसे ऐसे शब्दोंमें ब्रह्मतत्त्वका संकेत किया गया है कि जिसे कोई अनुभवी संत-महात्मा ही बतला सकते हैं। शब्दोंका अर्थ तो अपनी-अपनी भावनाके अनुसार विभिन्न प्रकारसे लगाया जा सकता है॥ ४॥

सम्बन्ध—*अब इसी बातको आध्यात्मिक भावसे समझाते हैं—*

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णꣳ संकल्पः ॥ ५ ॥

अथ=अब; **अध्यात्मम्**=आध्यात्मिक (उदाहरण दिया जाता है); **यत्**=जो कि; **मनः**=(हमारा) मन; **एतत्**=इस (ब्रह्म) के समीप; **गच्छति इव**=जाता हुआ-सा प्रतीत होता है; **च**=तथा; **एतत्**=इस ब्रह्मको; **अभीक्ष्णम्**=निरन्तर; **उपस्मरति**=अतिशय प्रेमपूर्वक स्मरण करता है; **अनेन**=इस मनके द्वारा (ही); **संकल्पः च**=संकल्प अर्थात् उस ब्रह्मके साक्षात्कारकी उत्कट अभिलाषा भी (होती है) ॥ ५ ॥

व्याख्या—जब साधकको अपना मन आराध्यदेव श्रीभगवान्‌के समीपतक पहुँचता हुआ-सा दीखता है, वह अपने मनसे भगवान्‌के निर्गुण या सगुण—जिस स्वरूपका भी चिन्तन करता है, उसकी जब प्रत्यक्ष अनुभूति-सी होती है, तब स्वाभाविक ही उसका अपने उस इष्टमें अत्यन्त प्रेम हो जाता है। फिर वह क्षणभरके लिये भी अपने इष्टदेवकी विस्मृतिको सहन नहीं कर सकता। उस समय वह अतिशय व्याकुल हो जाता है (**तद्विस्मरणे परमव्याकुलता**, नारदभक्तिसूत्र १९)। वह नित्य-निरन्तर प्रेमपूर्वक उसका स्मरण करता रहता है और उसके मनमें अपने इष्टको प्राप्त करनेकी अनिवार्य और परम उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। पिछले मन्त्रमें जो बात आधिदैविक दृष्टिसे कही गयी थी, वही इसमें आध्यात्मिक दृष्टिसे कही गयी है॥ ५॥

सम्बन्ध—*अब उस ब्रह्मकी उपासनाका प्रकार और उसका फल बतलाते हैं*—

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनँ सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति॥ ६॥

तत्=वह परब्रह्म परमात्मा; **तद्वनम्**=(प्राणिमात्रका प्रापणीय होनेके कारण) 'तद्वन'; **नाम ह**=नामसे प्रसिद्ध है; (अतः) **तद्वनम्**=वह आनन्दघन परमात्मा प्राणिमात्रकी अभिलाषाका विषय और सबका परम प्रिय है; **इति**=इस भावसे; **उपासितव्यम्**=उसकी उपासना करनी चाहिये; **सः यः**=वह जो भी साधक; **एतत्**=उस ब्रह्मको; **एवम्**=इस प्रकार (उपासनाके द्वारा); **वेद**=जान लेता है; **एनम् ह**=उसको निःसंदेह; **सर्वाणि**=सम्पूर्ण; **भूतानि**=प्राणी; **अभि**=सब ओरसे; **संवाञ्छन्ति**=हृदयसे चाहते हैं अर्थात् वह प्राणिमात्रका प्रिय हो जाता है॥ ६॥

व्याख्या—वह आनन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर सभीका अत्यन्त प्रिय है। सभी प्राणी किसी-न-किसी प्रकारसे उसीको चाहते हैं, परंतु पहचानते नहीं; इसीलिये वे सुखके रूपमें उसे खोजते हुए दुःखरूप विषयोंमें भटकते रहते हैं, उसे पा नहीं सकते! इस रहस्यको समझकर साधकको चाहिये कि उस

परब्रह्म परमात्माको प्राणिमात्रका प्रिय समझकर उसके नित्य अचल अमल अनन्त परम आनन्द स्वरूपका नित्य-निरन्तर चिन्तन करता रहे। ऐसा करते-करते जब वह आनन्दस्वरूप सर्वप्रिय परमात्माका साक्षात्कार कर लेता है, तब वह स्वयं भी आनन्दमय हो जाता है। अतः जगत्‌के सभी प्राणी उसे अपना परम आत्मीय समझकर उसके साथ हृदयसे प्रेम करने लगते हैं॥ ६॥

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ ७ ॥

भोः=हे गुरुदेव; **उपनिषदम्**=ब्रह्मसम्बन्धी रहस्यमयी विद्याका; **ब्रूहि**=उपदेश कीजिये; **इति**=इस प्रकार (शिष्यके प्रार्थना करनेपर गुरुदेव कहते हैं कि); **ते**=तुझको (हमने); **उपनिषत्**=रहस्यमयी ब्रह्मविद्या; **उक्ता**=बतला दी; **ते**=तुझको (हम); **वाव**=निश्चय ही; **ब्राह्मीम्**=ब्रह्म-विषयक; **उपनिषदम्**=रहस्यमयी विद्या; **अब्रूम**=बतला चुके हैं; **इति**= इस प्रकार (तुम्हें समझना चाहिये)॥ ७॥

व्याख्या—गुरुदेवसे सांकेतिक भाषामें ब्रह्मविद्याका श्रेष्ठ उपदेश सुनकर शिष्य उसको पूर्णरूपसे हृदयङ्गम नहीं कर सका; इसलिये उसने प्रार्थना की कि 'भगवन्! मुझे उपनषिद्—रहस्यमयी ब्रह्मविद्याका उपदेश कीजिये।' इसपर गुरुदेवने कहा—'वत्स! हम तुम्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश कर चुके हैं।' तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें **'श्रोत्रस्य श्रोत्रम्'** से लेकर उपर्युक्त मन्त्रतक जो कुछ उपदेश किया है, तुम यह दृढ़रूपसे समझ लो कि वह सुनिश्चित रहस्यमयी ब्रह्मविद्याका ही उपदेश है॥ ७॥

सम्बन्ध—*ब्रह्मविद्याके सुननेमात्रसे ही ब्रह्मके स्वरूपका रहस्य समझमें नहीं आता, इसके लिये विशेष साधनोंकी आवश्यकता होती है; इसलिये अब उन प्रधान साधनोंका वर्णन करते हैं—*

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्य-मायतनम् ॥ ८ ॥

तस्यै=उस रहस्यमयी ब्रह्मविद्याके; **तपः**=तपस्या; **दमः**=मन-इन्द्रियोंका

नियन्त्रण; **कर्म**=कर्तव्यपालन; **इति**=ये तीनों; **प्रतिष्ठाः**=आधार हैं; **वेदाः**=वेद; **सर्वाङ्गानि**=उस विद्याके सम्पूर्ण अङ्ग हैं अर्थात् वेदमें उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंका सविस्तर वर्णन है; **सत्यम्**=सत्यस्वरूप परमेश्वर; **आयतनम्**=उसका अधिष्ठान—प्राप्तव्य है ॥ ८ ॥

व्याख्या—सुन-पढ़कर रट लिया और ब्रह्मज्ञानी हो गये, यह तो ब्रह्मविद्याका उपहास है और अपने-आपको धोखा देना है। ब्रह्मविद्यारूपी प्रासादकी नीव हैं—तप, दम और कर्म आदि साधन। इन्हींपर वह रहस्यमयी ब्रह्मविद्या स्थिर हो सकती है। जो साधक साधन-सम्पत्तिकी रक्षा, वृद्धि तथा स्वधर्मपालनके लिये कठिन-से-कठिन कष्टको सहर्ष स्वीकार नहीं करते, जो मन और इन्द्रियोंको भलीभाँति वशमें नहीं कर लेते और जो निष्कामभावसे अनासक्त होकर वर्णाश्रमोचित अवश्यकर्तव्य कर्मका अनुष्ठान नहीं करते, वे ब्रह्मविद्याका यथार्थ रहस्य नहीं जान पाते; क्योंकि ये ही उसे जाननेके प्रधान आधार हैं। साथ ही यह भी जानना चाहिये कि वेद उस ब्रह्मविद्याके समस्त अङ्ग हैं। वेदमें ही ब्रह्मविद्याके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी विशद व्याख्या है, अतएव वेदोंका उसके अङ्गोंसहित अध्ययन करना चाहिये और सत्यस्वरूप परमेश्वर अर्थात् त्रिकालाबाधित सच्चिदानन्दघन परमेश्वर ही उस ब्रह्मविद्याका परम अधिष्ठान, आश्रयस्थल और परम लक्ष्य है। अतएव उस ब्रह्मको लक्ष्य करके जो वेदानुसार तप, दम और निष्काम कर्म आदिका आचरण करते हुए उसके तत्त्वका अनुसंधान करते हैं, वे ही ब्रह्मविद्याके सर्वस्व परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त कर सकते हैं ॥ ८ ॥

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ९ ॥

यः=कोई भी; **एताम् वै**=इस प्रसिद्ध ब्रह्मविद्याको; **एवम्**=पूर्वोक्त प्रकारसे भलीभाँति; **वेद**=जान लेता है; [**सः**=वह;] **पाप्मानम्**=समस्त पाप-समूहको; **अपहत्य**=नष्ट करके; **अनन्ते**=अविनाशी असीम; **ज्येये**=सर्वश्रेष्ठ; **स्वर्गे लोके**=परमधाममें; **प्रतितिष्ठति**=प्रतिष्ठित हो जाता है; **प्रतितिष्ठति**=

सदाके लिये स्थित हो जाता है ॥ ९ ॥

व्याख्या—ऊपर बतलाये हुए प्रकारसे जो उपनिषद्-रूपा ब्रह्मविद्याके रहस्यको जान लेता है, अर्थात् तदनुसार साधनमें प्रवृत्त हो जाता है, वह समस्त पापोंका—परमात्म-साक्षात्कारमें प्रतिबन्धकरूप समस्त शुभाशुभ कर्मोंका अशेषरूपसे नाश करके नित्य-सत्य सर्वश्रेष्ठ परमधाममें स्थित हो जाता है, कभी वहाँसे लौटता नहीं। सदाके लिये वहाँ प्रतिष्ठित हो जाता है। यहाँ 'प्रतिष्ठित' पदका पुनः उच्चारण ग्रन्थ-समाप्तिका सूचक तो है ही, साथ ही उपदेशकी निश्चितताका प्रतिपादक भी है ॥ ९ ॥

चतुर्थ खण्ड समाप्त ॥ ४ ॥

॥ सामवेदीय केनोपनिषद् समाप्त ॥



शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इसका अर्थ इस उपनिषद्के प्रारम्भमें दिया जा चुका है।



॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कठोपनिषद्

कठोपनिषद् उपनिषदोंमें बहुत प्रसिद्ध है। यह कृष्णयजुर्वेदकी कठशाखाके अन्तर्गत है। इसमें नचिकेता और यमके संवादरूपमें परमात्माके रहस्यमय तत्त्वका बड़ा ही उपयोगी और विशद वर्णन है। इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्यायमें तीन-तीन वल्लियाँ हैं।

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ=पूर्णब्रह्म परमात्मन्; (आप) **नौ**=हम दोनों (गुरु-शिष्य) की; **सह**=साथ-साथ; **अवतु**=रक्षा करें; **नौ**=हम दोनोंका; **सह**=साथ-साथ; **भुनक्तु**=पालन करें; **सह**=(हम दोनों) साथ-साथ ही; **वीर्यम्**=शक्ति; **करवावहै**=प्राप्त करें; **नौ**=हम दोनोंकी; **अधीतम्**=पढ़ी हुई विद्या; **तेजस्वि**=तेजोमयी; **अस्तु**=हो; **मा विद्विषावहै**=हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।

व्याख्या—हे परमात्मन्! आप हम गुरु-शिष्य दोनोंकी साथ-साथ सब प्रकारसे रक्षा करें, हम दोनोंका आप साथ-साथ समुचितरूपसे पालन-पोषण करें, हम दोनों साथ-ही-साथ सब प्रकारसे बल प्राप्त करें, हम दोनोंकी अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो—कहीं किसीसे हम विद्यामें परास्त न हों और हम दोनों जीवनभर परस्पर स्नेह-सूत्रसे बँधे रहें, हमारे अंदर परस्पर कभी द्वेष न हो। हे परमात्मन्! तीनों तापोंकी निवृत्ति हो।

प्रथम अध्याय

प्रथम वल्ली

ॐ उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ । तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥

ॐ=ॐ इस सच्चिदानन्दघन परमात्माके नामका स्मरण करके उपनिषद्का आरम्भ करते हैं; **ह वै**=प्रसिद्ध है कि; **उशन्**=यज्ञका फल चाहनेवाले; **वाजश्रवसः**=वाजश्रवाके पुत्र (उद्दालक) ने; **सर्ववेदसम्**=(विश्वजित् यज्ञमें) अपना सारा धन; **ददौ**=(ब्राह्मणोंको) दे दिया; **तस्य**=उसका; **नचिकेता**=नचिकेता; **नाम ह**=नामसे प्रसिद्ध; **पुत्रः आस**=एक पुत्र था ॥ १ ॥

व्याख्या—ग्रन्थके आरम्भमें परमात्माका स्मरण मङ्गलकारक है, इसलिये यहाँ सर्वप्रथम 'ॐ कार' का उच्चारण करके उपनिषद्का आरम्भ हुआ है। जिस समय भारतवर्षका पवित्र आकाश यज्ञधूम और उसके पवित्र सौरभसे परिपूर्ण रहता था, त्यागमूर्ति ऋषि-महर्षियोंके द्वारा गाये हुए वेदमन्त्रोंकी दिव्य ध्वनिसे सभी दिशाएँ गूँजती रहती थीं, उसी समयका यह प्रसिद्ध इतिहास है। गौतमवंशीय वाजश्रवात्मज महर्षि अरुणके पुत्र अथवा अन्नके प्रचुर दानसे महान् कीर्ति पाये हुए (वाज=अन्न, श्रव=उसके दानसे प्राप्त यश) महर्षि अरुणके पुत्र उद्दालक ऋषिने फलकी कामनासे विश्वजित् नामक एक महान् यज्ञ किया। इस यज्ञमें सर्वस्व दान करना पड़ता है। अतएव उद्दालकने भी अपना सारा धन ऋत्विजों और सदस्योंको दक्षिणामें दे दिया। उद्दालकजीके नचिकेता नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र था ॥ १ ॥

तँ ह कुमारँ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥ २ ॥

दक्षिणासु नीयमानासु=(जिस समय ब्राह्मणोंको) दक्षिणाके रूपमें देनेके लिये (गौएँ) लायी जा रही थीं, उस समय; **कुमारम्**=छोटा बालक;

सन्तम्=होनेपर भी; **तम् ह**=उस (नचिकेता) में; **श्रद्धा**=श्रद्धा (आस्तिक बुद्धि) का; **आविवेश**=आवेश हो गया (और); **सः**=(उन जराजीर्ण गायोंको देखकर) वह; **अमन्यत**=विचार करने लगा ॥ २ ॥

व्याख्या—उस समय गो-धन ही प्रधान धन था और वाजश्रवस उद्दालकके घरमें इस धनकी प्रचुरता थी। होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता—ये चार प्रधान ऋत्विज होते हैं; ऐसा माना गया है कि इनको सबसे अधिक गौएँ दी जाती हैं। प्रशास्ता, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणाच्छंसी और प्रस्तोता—इन चार गौण ऋत्विजोंको मुख्य ऋत्विजोंकी अपेक्षा आधी; अच्छावाक, नेष्टा, आग्नीध्र और प्रतिहर्ता—इन चार गौण ऋत्विजोंको मुख्य ऋत्विजोंकी अपेक्षा तिहाई एवं ग्रावस्तुत, नेता, होता और सुब्रह्मण्य—इन चार गौण ऋत्विजोंको मुख्य ऋत्विजोंकी अपेक्षा चौथाई गौएँ दी जाती हैं। नियमानुसार जब इन सबको दक्षिणाके रूपमें देनेके लिये गौएँ लायी जा रही थीं, उस समय बालक नचिकेताने उनको देख लिया। उनकी दयनीय दशा देखते ही उसके निर्मल अन्तःकरणमें श्रद्धा—आस्तिकताने प्रवेश किया और वह सोचने लगा— ॥ २ ॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥ ३ ॥

पीतोदकाः=जो (अन्तिम बार) जल पी चुकी हैं; **जग्धतृणाः**=जिनका घास खाना समाप्त हो गया है; **दुग्धदोहाः**=जिनका दूध (अन्तिम बार) दुह लिया गया है; **निरिन्द्रियाः**=जिनकी इन्द्रियाँ नष्ट हो चुकी हैं; **ताः**=ऐसी (निरर्थक, मरणासन्न) गौओंको; **ददत्**=देनेवाला; **सः**=वह दाता (तो); **ते लोकाः**=वे (शूकर-कूकरादि नीच योनियाँ और नरकादि) लोक; **अनन्दाः**=जो सब प्रकारके सुखोंसे शून्य; **नाम**=प्रसिद्ध हैं; **तान्**=उनको; **गच्छति**=प्राप्त होता है (अतः पिताजीको सावधान करना चाहिये) ॥ ३ ॥

व्याख्या—पिताजी ये कैसी गौएँ दक्षिणामें दे रहे हैं ! अब इनमें न तो झुककर जल पीनेकी शक्ति रही है, न इनके मुखमें घास चबानेके लिये दाँत

ही रह गये हैं और न इनके स्तनोंमें तनिक-सा दूध ही बचा है। अधिक क्या, इनकी तो इन्द्रियाँ भी निश्चेष्ट हो चुकी हैं—इनमें गर्भधारण करनेतककी भी सामर्थ्य नहीं है! भला, ऐसी निरर्थक और मृत्युके समीप पहुँची हुई गौएँ जिन ब्राह्मणोंके घर जायँगी, उनको दुःखके सिवा ये और क्या देंगी? दान तो उसी वस्तुका करना चाहिये, जो अपनेको सुख देनेवाली हो, प्रिय हो और उपयोगी हो तथा वह जिनको दी जाय, उन्हें भी सुख और लाभ पहुँचानेवाली हो। दुःखदायिनी अनुपयोगी वस्तुओंको दानके नामपर देना तो दानके व्याजसे अपनी विपद् टालना है और दान ग्रहण करनेवालोंको धोखा देना है। इस प्रकारके दानसे दाताको वे नीच योनियाँ और नरकादि लोक मिलते हैं जिनमें सुखका कहीं लेश भी नहीं है। पिताजी इस दानसे क्या सुख पायेंगे? यह तो यज्ञमें वैगुण्य है, जो इन्होंने सर्वस्व-दानरूपी यज्ञ करके भी उपयोगी गौओंको मेरे नामपर रख लिया है; और सर्वस्वमें तो मैं भी हूँ, मुझको तो इन्होंने दानमें दिया नहीं। पर मैं इनका पुत्र हूँ, अतएव मैं पिताजीको इस अनिष्टकारी परिणामसे बचानेके लिये अपना बलिदान कर दूँगा। यही मेरा धर्म है॥ ३॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति। द्वितीयं तृतीयं तँ् होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति॥ ४॥

सः ह=यह सोचकर वह; **पितरम्**=अपने पितासे; **उवाच**=बोला कि; **तत (तात)**=हे प्यारे पिताजी! आप; **माम्**=मुझे; **कस्मै**=किसको; **दास्यसि इति**=देंगे?; (उत्तर न मिलनेपर उसने वही बात) **द्वितीयम्**=दुबारा; **तृतीयम्**=तिबारा (कही); **तम् ह**=(तब पिताने) उससे; **उवाच**=(क्रोधपूर्वक इस प्रकार) कहा; **त्वा**=तुझे (मैं); **मृत्यवे**=मृत्युको; **ददामि इति**=देता हूँ॥ ४॥

व्याख्या—यह निश्चय करके उसने अपने पितासे कहा—'पिताजी! मैं भी तो आपका धन हूँ, आप मुझे किसको देते हैं?' पिताने कोई उत्तर नहीं दिया; तब नचिकेताने फिर कहा—'पिताजी! मुझे किसको देते हैं?' पिताने इस बार भी उपेक्षा की। पर धर्मभीरु और पुत्रका कर्तव्य जाननेवाले

****

नचिकेतासे नहीं रहा गया। उसने तीसरी बार फिर वही कहा—'पिताजी ! आप मुझे किसको देते हैं?' अब ऋषिको क्रोध आ गया और उन्होंने आवेशमें आकर कहा—'तुझे देता हूँ मृत्युको !' ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*यह सुनकर नचिकेता मन-ही-मन विचारने लगा कि—*

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।
कि्ँस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥ ५ ॥

बहूनाम्=मैं बहुत-से शिष्योंमें तो; **प्रथमः**=प्रथम श्रेणीके आचरणपर; **एमि**=चलता आया हूँ (और); **बहूनाम्**=बहुतोंमें; **मध्यमः**=मध्यम श्रेणीके आचारपर; **एमि**=चलता हूँ (कभी भी नीची श्रेणीके आचरणको मैंने नहीं अपनाया फिर पिताजीने ऐसा क्यों कहा!); **यमस्य**=यमका; **किम् स्वित् कर्तव्यम्**=ऐसा कौन-सा कार्य हो सकता है; **यत् अद्य**=जिसे आज; **मया**=मेरेद्वारा (मुझे देकर); **करिष्यति**=(पिताजी) पूरा करेंगे ॥ ५ ॥

व्याख्या—शिष्यों और पुत्रोंकी तीन श्रेणियाँ होती हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। जो गुरु या पिताका मनोरथ समझकर उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा किये बिना ही उनकी रुचिके अनुसार कार्य करने लगते हैं, वे उत्तम हैं। जो आज्ञा पानेपर कार्य करते हैं, वे मध्यम हैं और जो मनोरथ जान लेने और स्पष्ट आदेश सुन लेनेपर भी तदनुसार कार्य नहीं करते, वे अधम हैं। मै बहुत-से शिष्योंमें तो प्रथम श्रेणीका हूँ, प्रथम श्रेणीके आचरणपर चलनेवाला हूँ; क्योंकि उनसे पहले ही मनोरथ समझकर कार्य कर देता हूँ; बहुत-से शिष्योंसे मध्यम श्रेणीका भी हूँ, मध्यम श्रेणीके आचारपर भी चलता आया हूँ; परंतु अधम श्रेणीका तो हूँ ही नहीं। आज्ञा मिले और सेवा न करूँ, ऐसा तो मैंने कभी किया ही नहीं। फिर, पता नहीं, पिताजीने मुझे ऐसा क्यों कहा? मृत्युदेवताका भी ऐसा कौन-सा प्रयोजन है, जिसको पिताजी आज मुझे उनको देकर पूरा करना चाहते हैं ॥ ५ ॥

सम्बन्ध—*सम्भव है, पिताजीने क्रोधके आवेशमें ही ऐसा कह दिया हो; परंतु जो कुछ भी हो, पिताजीका वचन तो सत्य करना ही है। इधर ऐसा दीख रहा है कि पिताजी अब पश्चात्ताप*

कर रहे हैं, अतएव उन्हें सान्त्वना देना भी आवश्यक है। यह विचारकर नचिकेता एकान्तमें पिताके पास जाकर उनकी शोकनिवृत्तिके लिये इस प्रकार आश्वासनपूर्ण वचन बोला—

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः॥ ६॥

पूर्वे=आपके पूर्वज पितामह आदि; **यथा**=जिस प्रकारका आचरण करते आये हैं; **अनुपश्य**=उसपर विचार कीजिये (और); **अपरे**=(वर्तमानमें भी) दूसरे श्रेष्ठ लोग; [**यथा**=जैसा आचरण कर रहे हैं;] **तथा प्रतिपश्य**= उसपर भी दृष्टिपात कर लीजिये (फिर आप अपने कर्तव्यका निश्चय कीजिये); **मर्त्यः**=(यह) मरणधर्मा मनुष्य; **सस्यम् इव**=अनाजकी तरह; **पच्यते**=पकता है अर्थात् जराजीर्ण होकर मर जाता है (तथा); **सस्यम् इव**=अनाजकी भाँति ही; **पुनः**=फिर; **आजायते**=उत्पन्न हो जाता है॥ ६॥

व्याख्या—पिताजी! अपने पितामहादि पूर्वजोंका आचरण देखिये और इस समयके दूसरे श्रेष्ठ पुरुषोंका आचरण देखिये। उनके चरित्रमें न कभी पहले असत्य था, न अब है। असाधु मनुष्य ही असत्यका आचरण किया करते हैं; परंतु उस असत्यसे कोई अजर-अमर नहीं हो सकता। मनुष्य मरणधर्मा है। यह अनाजकी भाँति जरा-जीर्ण होकर मर जाता है और अनाजकी भाँति ही कर्मवश पुनः जन्म ले लेता है॥ ६॥

सम्बन्ध—*अतएव इस अनित्य जीवनके लिये मनुष्यको कभी कर्तव्यका त्याग करके मिथ्या आचरण नहीं करना चाहिये। आप शोकका त्याग कीजिये और अपने सत्यका पालनकर मुझे मृत्यु (यमराज) के पास जानेकी अनुमति दीजिये। पुत्रके वचन सुनकर उद्दालकको दुःख हुआ; परंतु नचिकेताकी सत्यपरायणता देखकर उन्होंने उसे यमराजके पास भेज दिया। नचिकेताको यमसदन पहुँचनेपर पता लगा कि यमराज कहीं बाहर गये हुए हैं; अतएव नचिकेता तीन दिनोंतक अन्न-जल ग्रहण किये बिना ही यमराजकी प्रतीक्षा करता रहा। यमराजके लौटनेपर उनकी पत्नीने कहा—*

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैताँ शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥ ७॥

वैवस्वत=हे सूर्यपुत्र; **वैश्वानरः**=स्वयं अग्निदेवता (ही); **ब्राह्मणः अतिथिः**=ब्राह्मण अतिथिके रूपमें; **गृहान्**=(गृहस्थके) घरोंमें; **प्रविशति**=प्रवेश करते हैं; **तस्य**=उनकी; (साधु पुरुष) **एताम्**=ऐसी (अर्थात् अर्घ्य-पाद्य-आसन आदिके द्वारा); **शान्तिम्**=शान्ति; **कुर्वन्ति**=किया करते हैं; (अतः आप) **उदकम् हर**=(उनके पाद-प्रक्षालनादिके लिये) जल ले जाइये ॥ ७ ॥

व्याख्या—साक्षात् अग्नि ही मानो तेजसे प्रज्वलित होकर ब्राह्मण अतिथिके रूपमें गृहस्थके घरपर पधारते हैं। साधुहृदय गृहस्थ अपने कल्याणके लिये उस अतिथिरूप अग्निको शान्त करनेके लिये उसे जल (पाद्य-अर्घ्य आदि) दिया करते हैं; अतएव हे सूर्यपुत्र ! आप उस ब्राह्मण-बालकके पैर धोनेके लिये तुरंत जल ले जाइये। भाव यह कि वह अतिथि लगातार तीन दिनोंसे आपकी प्रतीक्षामें अनशन किये बैठा है; आप स्वयं उसकी सेवा करेंगे, तभी वह शान्त होगा ॥ ७ ॥

आशाप्रतीक्षे संगत्ँ सूनृतां च
इष्टापूर्ते पुत्रपशूँश्च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥

यस्य=जिसके; **गृहे**=घरमें; **ब्राह्मणः**=ब्राह्मण अतिथि; **अनश्नन्**=बिना भोजन किये; **वसति**=निवास करता है; [**तस्य**=उस;] **अल्पमेधसः**=मन्दबुद्धि; **पुरुषस्य**=मनुष्यकी; **आशाप्रतीक्षे**=नाना प्रकारकी आशा और प्रतीक्षा; **संगतम्**=उनकी पूर्तिसे होनेवाले सब प्रकारके सुख; **सूनृताम् च**=सुन्दर भाषणके फल एवं; **इष्टापूर्ते च**=यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मोंके और कुआँ, बगीचा, तालाब आदि निर्माण करानेके फल तथा; **सर्वान् पुत्रपशून्** =समस्त पुत्र और पशु; **एतद् वृङ्क्ते**=इन सबको (वह) नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

व्याख्या—जिसके घरपर अतिथि ब्राह्मण भूखा बैठा रहता है, उस मन्दबुद्धि मनुष्यको न तो वे इच्छित पदार्थ मिलते हैं, जिनके मिलनेकी उसे

पूरी आशा थी; न वे ही पदार्थ मिलते हैं, जिनके मिलनेका निश्चय था और वह बाट ही देख रहा था; कभी कोई पदार्थ मिल भी गया तो उससे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। उसकी वाणीमेंसे सौन्दर्य, सत्य और माधुर्य निकल जाते हैं; अतः सुन्दर वाणीसे प्राप्त होनेवाला सुख भी उसे नहीं मिलता; उसके यज्ञ-दानादि इष्ट कर्म और कूप, तालाब, धर्मशाला आदिके निर्माणरूप पूर्तकर्म एवं उनके फल नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, अतिथिका असत्कार उसके पूर्वपुण्यसे प्राप्त पुत्र और पशु आदि धनको नष्ट कर देता है॥ ८॥

सम्बन्ध—*पत्नीके वचन सुनकर धर्ममूर्ति यमराज तुरंत नचिकेताके पास गये और पाद्य-अर्घ्य आदिके द्वारा विधिवत् उसकी पूजा करके कहने लगे—*

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे
अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु
तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व॥ ९॥

ब्रह्मन्=हे ब्राह्मणदेवता; **नमस्यः अतिथिः**=आप नमस्कार करने-योग्य अतिथि हैं; **ते**=आपको; **नमः अस्तु**=नमस्कार हो; **ब्रह्मन्**=हे ब्राह्मण; **मे स्वस्ति**=मेरा कल्याण; **अस्तु**=हो; **यत्**=(आपने) जो; **तिस्रः**=तीन; **रात्रीः**=रात्रियोंतक; **मे**=मेरे; **गृहे**=घरपर; **अनश्नन्**=बिना भोजन किये; **अवात्सीः**=निवास किया है; **तस्मात्**=इसलिये आप (मुझसे); **प्रति**=प्रत्येक रात्रिके बदले (एक-एक करके); **त्रीन् वरान्**=तीन वरदान; **वृणीष्व**=माँग लीजिये॥ ९॥

व्याख्या—ब्राह्मणदेवता! आप नमस्कारादि सत्कारके योग्य मेरे माननीय अतिथि हैं; कहाँ तो मुझे चाहिये था कि 'मैं आपका यथायोग्य पूजन-सेवन करके आपको संतुष्ट करता और कहाँ मेरे प्रमादसे आप लगातार तीन रात्रियोंसे भूखे बैठे हैं! मुझसे यह बड़ा अपराध हो गया है। आपको नमस्कार है। भगवन्! इस मेरे दोषकी निवृत्ति होकर मेरा कल्याण हो। आप प्रत्येक रात्रिके बदले एक-एक करके मुझसे अपनी इच्छाके अनुरूप तीन वर

माँग लीजिये' ॥ ९ ॥

सम्बन्ध—*तपोमूर्ति अतिथि ब्राह्मण-बालकके अनशनसे भयभीत होकर धर्मज्ञ यमराजने जब इस प्रकार कहा, तब पिताको सुख पहुँचानेकी इच्छासे नचिकेता बोला—*

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो ।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥ १० ॥

मृत्यो=हे मृत्युदेव; **यथा**=जिस प्रकार; **गौतमः**=(मेरे पिता) गौतमवंशीय उद्दालक; **मा अभि**=मेरे प्रति; **शान्तसंकल्पः**=शान्त संकल्पवाले; **सुमनाः**=प्रसन्नचित्त (और); **वीतमन्युः**=क्रोध एवं खेदसे रहित; **स्यात्**=हो जायँ (तथा); **त्वत्प्रसृष्टम्**=आपके द्वारा वापस भेजा जानेपर जब मैं उनके पास जाऊँ तो; **मा प्रतीतः**=वे मुझपर विश्वास करके (यह वही मेरा पुत्र नचिकेता है, ऐसा भाव रखकर); **अभिवदेत्**=मेरे साथ प्रेमपूर्वक बातचीत करें; **एतत्**=यह; (मैं) **त्रयाणाम्**=अपने तीनों वरोंमेंसे; **प्रथमम् वरम्**=पहला वर; **वृणे**=माँगता हूँ ॥ १० ॥

व्याख्या—मृत्युदेव ! तीन वरोंमेंसे मैं प्रथम वर यही माँगता हूँ कि मेरे गौतमवंशीय पिता उद्दालक, जो क्रोधके आवेशमें मुझे आपके पास भेजकर अब अशान्त और दुःखी हो रहे हैं, मेरे प्रति क्रोधरहित, शान्तचित्त और सर्वथा संतुष्ट हो जायँ तथा आपके द्वारा अनुमति पाकर जब मैं घर जाऊँ, तब वे मुझे अपने पुत्र नचिकेताके रूपमें पहचानकर मेरे साथ पूर्ववत् बड़े स्नेहसे बातचीत करें ॥ १० ॥

सम्बन्ध—*यमराजने कहा—*

यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत
औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः ।
सुखꣳ रात्रीः शयिता वीतमन्यु-
स्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ ११ ॥

त्वाम्=तुमको; **मृत्युमुखात्**=मृत्युके मुखसे; **प्रमुक्तम्**=छूटा हुआ; **ददृशिवान्**=देखकर; **मत्प्रसृष्टः**=मुझसे प्रेरित; **आरुणिः**=(तुम्हारे पिता)

अरुण-पुत्र; **औद्दालकिः**=उद्दालक; **यथा पुरस्तात्**=पहलेकी भाँति ही; **प्रतीतः**=यह मेरा पुत्र नचिकेता ही है, ऐसा विश्वास करके; **वीतमन्युः**=दुःख और क्रोधसे रहित; **भविता**=हो जायँगे; **रात्रीः**=(और वे अपनी आयुकी शेष) रात्रियोंमें; **सुखम्**=सुखपूर्वक; **शयिता**=शयन करेंगे ॥ ११ ॥

व्याख्या—तुमको मृत्युके मुखसे छूटकर घर लौटा हुआ देखकर मेरी प्रेरणासे तुम्हारे पिता अरुण-पुत्र उद्दालक बड़े प्रसन्न होंगे, तुमको अपने पुत्ररूपमें पहचानकर तुमसे पूर्ववत् प्रेम करेंगे तथा उनका दुःख और क्रोध सर्वथा शान्त हो जायगा। तुम्हें पाकर अब वे जीवनभर सुखकी नींद सोयेंगे ॥ ११ ॥

सम्बन्ध—*इस वरदानको पाकर नचिकेता बोला, हे यमराज !*

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति
न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १२ ॥

स्वर्गे लोके=स्वर्गलोकमें; **किंचन भयम्**=किंचिन्मात्र भी भय; **न अस्ति**=नहीं है; **तत्र त्वम् न**=वहाँ मृत्युरूप स्वयं आप भी नहीं हैं; **जरया न बिभेति**=वहाँ कोई बुढ़ापेसे भी भय नहीं करता; **स्वर्गलोके**=स्वर्गलोकके निवासी; **अशनायापिपासे**=भूख और प्यास; **उभे तीर्त्वा**=इन दोनोंसे पार होकर; **शोकातिगः**=दुःखोंसे दूर रहकर; **मोदते**=आनन्द भोगते हैं ॥ १२ ॥

स त्वमग्नि स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो
प्रब्रूहि त्व श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त
एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ॥ १३ ॥

मृत्यो=हे मृत्युदेव; **सः त्वम्**=वे आप; **स्वर्ग्यम् अग्निम्**=उपर्युक्त स्वर्गकी प्राप्तिके साधनरूप अग्निको; **अध्येषि**=जानते हैं (अतः); **त्वम्**=आप; **मह्यम्**=मुझ; **श्रद्दधानाय**=श्रद्धालुको (वह अग्निविद्या); **प्रब्रूहि**= भलीभाँति

समझाकर कहिये; **स्वर्गलोकाः**=स्वर्गलोकके निवासी; **अमृतत्वम्**=अमरत्वको; **भजन्ते**=प्राप्त होते हैं (इसलिये); **एतत्**=यह (मैं); **द्वितीयेन वरेण**=दूसरे वरके रूपमें; **वृणे**=माँगता हूँ॥ १३ ॥

व्याख्या—मैं जानता हूँ कि स्वर्गलोक बड़ा सुखकर है, वहाँ किसी प्रकारका भी भय नहीं है। स्वर्गमें न तो कोई वृद्धावस्थाको प्राप्त होता है और न जैसे मर्त्यलोकमें आप (मृत्यु) के द्वारा लोग मारे जाते हैं वैसे कोई मारा ही जाता है। वहाँ मृत्युकालीन संकट नहीं है। यहाँ जैसे प्रत्येक प्राणी भूख और प्यास दोनोंकी ज्वालासे जलते हैं; वैसे वहाँ नहीं जलना पड़ता। वहाँके निवासी शोकसे तरकर सदा आनन्द भोगते हैं; परंतु वह स्वर्ग अग्निविज्ञानको जाने बिना नहीं मिलता। हे मृत्युदेव! आप उस स्वर्गके साधनभूत अग्निको यथार्थरूपसे जानते हैं। मेरी उस अग्निविद्यामें और आपमें श्रद्धा है, श्रद्धावान् तत्त्वका अधिकारी होता है; अतः आप कृपया मुझको उस अग्निविद्याका उपदेश कीजिये, जिसे जानकर लोग स्वर्गलोकमें रहकर अमृतत्वको—देवत्वको प्राप्त होते हैं। यह मैं आपसे दूसरा वर माँगता हूँ॥ १२-१३ ॥

सम्बन्ध—*तब यमराज बोले*—

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध
स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां
विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम्॥ १४ ॥

नचिकेतः=हे नचिकेता; **स्वर्ग्यम् अग्निम्**=स्वर्गदायिनी अग्निविद्याको; **प्रजानन्**=अच्छी तरह जाननेवाला मैं; **ते प्रब्रवीमि**=तुम्हारे लिये उसे भलीभाँति बतलाता हूँ; **तत् उ मे निबोध**=(तुम) उसे मुझसे भलीभाँति समझ लो; **त्वम् एतम्**=तुम इस विद्याको; **अनन्तलोकाप्तिम्**=अविनाशी लोककी प्राप्ति करानेवाली, **प्रतिष्ठाम्**=उसकी आधारस्वरूपा; **अथो**=और; **गुहायाम् निहितम्**=बुद्धिरूप गुफामें छिपी हुई; **विद्धि**=समझो॥ १४ ॥

व्याख्या—नचिकेता ! मैं उस स्वर्गकी साधनरूपा अग्निविद्याको भलीभाँति जानता हूँ और तुमको यथार्थरूपसे बतलाता हूँ। तुम इसको अच्छी तरहसे सुनो। यह अग्निविद्या अनन्त—विनाशरहित लोककी प्राप्ति करानेवाली है और उसकी आधारस्वरूपा है। पर तुम ऐसा समझो कि यह है अत्यन्त गुप्त। विद्वानोंकी बुद्धिरूप गुफामें छिपी रहती है॥ १४॥

सम्बन्ध—*इतना कहकर यमराजने*—

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै
या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्त-
मथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः॥ १५॥

तम् लोकादिम्=उस स्वर्गलोककी कारणरूपा; **अग्निम्**=अग्निविद्याका; **तस्मै उवाच**=उस नचिकेताको उपदेश दिया; **याः वा यावतीः**= उसमें कुण्ड-निर्माण आदिके लिये जो-जो और जितनी; **इष्टकाः**=ईंटें आदि आवश्यक होती हैं; **वा यथा**=तथा जिस प्रकार उनका चयन किया जाता है (वे सब बातें भी बतायीं); **च सः अपि**=तथा उस नचिकेताने भी; **तत् यथोक्तम्**=वह जैसा सुना था, ठीक उसी प्रकार समझकर; **प्रत्यवदत्**= यमराजको पुनः सुना दिया; **अथ**=उसके बाद; **मृत्युः अस्य तुष्टः**=यमराज उसपर संतुष्ट होकर; **पुनः एव आह**=फिर बोले—॥ १५॥

व्याख्या—उपर्युक्त प्रकारसे अग्निविद्याकी महत्ता और गोपनीयता बतलाकर यमराजने स्वर्गलोककी कारणरूपा अग्निविद्याका रहस्य नचिकेताको समझाया। अग्निके लिये कुण्ड-निर्माणादिमें किस आकारकी, कैसी और कितनी ईंटें चाहिये एवं अग्निका चयन किस प्रकार किया जाना चाहिये—यह सब भलीभाँति समझाया। तदनन्तर नचिकेताकी बुद्धि तथा स्मृतिकी परीक्षाके लिये यमराजने नचिकेतासे पूछा कि तुमने जो कुछ समझा हो, वह मुझे सुनाओ। तीक्ष्णबुद्धि नचिकेताने सुनकर जैसा यथार्थ समझा था, सब ज्यों-का-त्यों सुना दिया। यमराज उसकी विलक्षण स्मृति और प्रतिभाको

देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले॥ १५॥

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा
वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः
सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥ १६ ॥

प्रीयमाणः=(उनकी अलौकिक बुद्धि देखकर) प्रसन्न हुए; **महात्मा**=महात्मा यमराज; **तम्**=उस नचिकेतासे; **अब्रवीत्**=बोले; **अद्य**=अब मैं; **तव**=तुमको; **इह**=यहाँ; **भूयः वरम्**=पुनः यह (अतिरिक्त) वर; **ददामि**=देता हूँ कि; **अयम् अग्निः**=यह अग्निविद्या; **तव एव नाम्ना**=तुम्हारे ही नामसे; **भविता**=प्रसिद्ध होगी; **च इमाम्**=तथा इस; **अनेकरूपाम् सृङ्काम्**=अनेक रूपोंवाली रत्नोंकी मालाको भी; **गृहाण**=तुम स्वीकार करो॥ १६॥

व्याख्या—महात्मा यमराजने प्रसन्न होकर नचिकेतासे कहा—'तुम्हारी अप्रतिम योग्यता देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, इससे अब मैं तुम्हें एक वर और तुम्हारे बिना माँगे ही देता हूँ। वह यह कि यह अग्नि, जिसका मैंने तुमको उपदेश किया है, तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगी। और साथ ही यह लो, मैं तुम्हें तुम्हारे देवत्वकी सिद्धिके लिये यह अनेक रूपोंवाली विविध यज्ञ-विज्ञानरूपी रत्नोंकी माला देता हूँ। इसे स्वीकार करो॥ १६ ॥

सम्बन्ध—*उस अग्निविद्याका फल बतलाते हुए यमराज कहते हैं*—

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य संधिं
त्रिकर्मकृत् तरति जन्ममृत्यू।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा
निचाय्येमाँ्शान्तिमत्यन्तमेति ॥ १७ ॥

त्रिणाचिकेतः=इस (अग्निका शास्त्रोक्त रीतिसे) तीन बार अनुष्ठान करनेवाला; **त्रिभिः संधिम् एत्य**=तीनों (ऋक्, साम, यजुर्वेद) के साथ सम्बन्ध जोड़कर; **त्रिकर्मकृत्**=यज्ञ, दान और तपरूप तीनों कर्मोंको निष्काम-भावसे करता रहनेवाला मनुष्य; **जन्ममृत्यू तरति**=जन्म-मृत्युसे तर जाता है;

ब्रह्मजज्ञम्=(वह) ब्रह्मासे उत्पन्न सृष्टिके जाननेवाले; **ईड्यम् देवम्**=स्तवनीय इस अग्निदेवको; **विदित्वा**=जानकर तथा; **निचाय्य**=इसका निष्कामभावसे चयन करके; **इमाम् अत्यन्तम् शान्तिम् एति**=इस अनन्त शान्तिको पा जाता है (जो मुझको प्राप्त है) ॥ १७ ॥

व्याख्या—इस अग्निका तीन बार अनुष्ठान करनेवाला पुरुष ऋक्, यजुः, साम—तीनों वेदोंसे सम्बन्ध जोड़कर तीनों वेदोंके तत्त्व-रहस्यमें निष्णात होकर, निष्कामभावसे यज्ञ, दान और तपरूप तीनों कर्मोंको करता हुआ जन्म-मृत्युसे तर जाता है। वह ब्रह्मासे उत्पन्न सृष्टिको जाननेवाले स्तवनीय इस अग्निदेवको भलीभाँति जानकर इसका निष्कामभावसे चयन करके उस अनन्त शान्तिको प्राप्त हो जाता है, जो मुझको प्राप्त है ॥ १७ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा
य एवं विद्वाँश्चिनुते नाचिकेतम्।
स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १८ ॥

एतत् त्रयम्=ईंटोंके स्वरूप, संख्या और अग्नि-चयन-विधि—इन तीनों बातोंको; **विदित्वा**=जानकर; **त्रिणाचिकेतः**=तीन बार नाचिकेत-अग्निविद्याका अनुष्ठान करनेवाला तथा; **यः एवम्**=जो कोई भी इस प्रकार; **विद्वान्**=जाननेवाला पुरुष; **नाचिकेतम्**=इस नाचिकेत अग्निका; **चिनुते**=चयन करता है; **सः मृत्युपाशान्**=वह मृत्युके पाशको; **पुरतः प्रणोद्य**=अपने सामने ही (मनुष्य-शरीरमें ही) काटकर; **शोकातिगः**=शोकसे पार होकर; **स्वर्गलोके मोदते**=स्वर्गलोकमें आनन्दका अनुभव करता है ॥ १८ ॥

व्याख्या—किस आकारकी कैसी ईंटें हों और कितनी संख्यामें हों एवं किस प्रकारसे अग्निका चयन किया जाय—इन तीनों बातोंको जानकर जो विद्वान् तीन बार नाचिकेत अग्निविद्याका निष्कामभावसे अनुष्ठान करता है—अग्निका चयन करता है, वह देहपातसे पहले ही (जन्म) मृत्युके पाशको तोड़कर शोकरहित होकर अन्तमें स्वर्गलोकके (अविनाशी ऊर्ध्वलोकके)

आनन्दका अनुभव करता है॥ १८॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो
यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनास-
स्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥ १९ ॥

नचिकेतः=हे नचिकेता; **एषः ते**=यह तुम्हें बतलायी हुई; **स्वर्ग्यः अग्निः**=स्वर्ग प्रदान करनेवाली अग्निविद्या है; **यम् द्वितीयेन वरेण अवृणीथाः**=जिसको तुमने दूसरे वरसे माँगा था; **एतम् अग्निम्**=इस अग्निको (अबसे); **जनासः**=लोग; **तव एव**=तुम्हारे ही नामसे; **प्रवक्ष्यन्ति**=कहा करेंगे; **नचिकेतः**=हे नचिकेता; **तृतीयम् वरम् वृणीष्व**=(अब तुम) तीसरा वर माँगो॥ १९॥

व्याख्या—यमराज कहते हैं—नचिकेता! तुम्हें यह उसी स्वर्गकी साधनरूपा अग्निविद्याका उपदेश दिया गया है, जिसके लिये तुमने दूसरे वरमें याचना की थी। अबसे लोग तुम्हारे ही नामसे इस अग्निको पुकारा करेंगे। नचिकेता! अब तुम तीसरा वर माँगो॥ १९॥

सम्बन्ध—*नचिकेता तीसरा वर माँगता है—*

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ २० ॥

प्रेते मनुष्ये=मरे हुए मनुष्यके विषयमें; **या इयम्**=जो यह; **विचिकित्सा**=संशय है; **एके (आहुः) अयम् अस्ति इति**=कोई तो यों कहते हैं कि मरनेके बाद यह आत्मा रहता है; **च एके (आहुः) न अस्ति इति**=और कोई ऐसा कहते हैं कि नहीं रहता; **त्वया अनुशिष्टः**=आपके द्वारा उपदेश पाया हुआ; **अहम् एतत् विद्याम्**=मैं इसका निर्णय भलीभाँति समझ लूँ; **एषः वराणाम्**=यही तीनों वरोंमेंसे; **तृतीयः वरः**=तीसरा वर है॥ २०॥

व्याख्या—इस लोकके कल्याणके लिये पिताकी संतुष्टिका वर और परलोकके लिये स्वर्गके साधनरूप अग्निविज्ञानका वर प्राप्त करके अब नचिकेता आत्माके यथार्थस्वरूप और उसकी प्राप्तिका उपाय जाननेके लिये यमराजके सामने दूसरे लोगोंके दो मत उपस्थित करके उसपर उनका अनुभूत विचार सुनना चाहता है। इसलिये नचिकेता कहता है कि भगवन्! मृत मनुष्यके सम्बन्धमें यह एक बड़ा संदेह फैला हुआ है। कुछ लोग तो कहते हैं कि मृत्युके बाद भी आत्माका अस्तित्व रहता है और कुछ लोग कहते हैं, नहीं रहता। इस विषयमें आपका जो अनुभव हो वह मुझे बतलाइये।* आपके द्वारा उपदेश पाकर मैं इस रहस्यको भलीभाँति समझ लूँ। बस, तीनों वरोंमेंसे यही मेरा अभीष्ट तीसरा वर है॥ २०॥

सम्बन्ध—*नचिकेताका महत्त्वपूर्ण प्रश्न सुनकर यमराजने मन-ही-मन उसकी प्रशंसा की। सोचा कि ऋषिकुमार बालक होनेपर भी बड़ा प्रतिभाशाली है, कैसे गोपनीय विषयको जानना चाहता है; परंतु आत्मतत्त्व उपयुक्त अधिकारीको ही बतलाना चाहिये।*

---

* मृत्युके पश्चात् आत्माका अस्तित्व रहता है या नहीं, इस सम्बन्धमें नचिकेताको स्वयं कोई संदेह नहीं है। पिताको दक्षिणामें जरा-जीर्ण गौएँ देते देखकर नचिकताने स्पष्ट कहा था कि ऐसी गौओंका दान करनेवाले आनन्दरहित (अनन्दाः) नरकादि लोकोंको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार दूसरे वरमें नचिकेताने स्वर्गसुखोंका वर्णन करके स्वर्गप्राप्तिके साधनरूप अग्निविद्याके उपदेशकी प्रार्थना की थी। इससे सिद्ध है कि वह स्वर्ग और नरकमें विश्वास करता था। स्वर्ग-नरकादि लोकोंकी प्राप्ति मरनेके पश्चात् ही होती है। आत्माका अस्तित्व न हो तो ये लोक किसको प्राप्त हों। यहाँ इसीलिये नचिकेताने अपना मत न बताकर कहा है कि कुछ लोग मरनेके बाद आत्माका अस्तित्व मानते हैं और कुछ लोग नहीं मानते। यह प्रश्नका एक ऐसा सुन्दर प्रकार है कि जिसके उत्तरमें आत्माकी नित्य सत्ता, उसके स्वरूप, गुण और परम लक्ष्य परमात्माकी प्राप्तिके साधनोंका विवरण अपने-आप ही आ जाता है। अतः यह प्रश्न आत्मज्ञान-विषयक है, न कि आत्माके अस्तित्वमें संदेह-व्यञ्जक। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें नचिकेताका जो इतिहास मिलता है, उसमें तो नचिकेताने तीसरे वरमें पुनर्मृत्यु (जन्म-मृत्यु) पर विजय पानेका—मुक्तिका साधन जानना चाहा है (तृतीयं वृणीष्वेति। पुनर्मृत्योर्मेऽपचितिं ब्रूहि)।

****

अनधिकारीके प्रति आत्मतत्त्वका उपदेश करना हानिकर होता है, अतएव पहले पात्र-परीक्षाकी आवश्यकता है—यों विचारकर यमराजने इस तत्त्वकी कठिनताका वर्णन करके नचिकेताको टालना चाहा और कहा—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम्॥ २१॥

नचिकेतः=हे नचिकेता; **अत्र पुरा**=इस विषयमें पहले; **देवैः अपि**=देवताओंने भी; **विचिकित्सितम्**=संदेह किया था (परंतु उनकी भी समझमें नहीं आया); **हि एषः धर्मः अणुः**=क्योंकि यह विषय बड़ा सूक्ष्म है; **न सुविज्ञेयम्**=सहज ही समझमें आनेवाला नहीं है (इसलिये); **अन्यम् वरम् वृणीष्व**=तुम दूसरा वर माँग लो; **मा मा उपरोत्सीः**=मुझपर दबाव मत डालो; **एनम् मा**=इस आत्मज्ञानसम्बन्धी वरको मुझे; **अतिसृज**=लौटा दो॥ २१॥

व्याख्या—नचिकेता! यह आत्मतत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म विषय है। इसका समझना सहज नहीं है। पहले देवताओंको भी इस विषयमें संदेह हुआ था। उनमें भी बहुत विचार-विनिमय हुआ था; परंतु वे भी इसको जान नहीं पाये। अतएव तुम दूसरा वर माँग लो। मैं तुम्हें तीन वर देनेका वचन दे चुका हूँ, अतएव तुम्हारा ऋणी हूँ; पर तुम इस वरके लिये, जैसे महाजन ऋणीको दबाता है वैसे मुझको मत दबाओ। इस आत्मतत्त्वविषयक वरको मुझे लौटा दो। इसको मेरे लिये छोड़ दो॥ २१॥

सम्बन्ध—*नचिकेता आत्मतत्त्वकी कठिनताकी बात सुनकर तनिक भी घबराया नहीं, न उसका उत्साह ही मन्द हुआ; वरं उसने और भी दृढ़ताके साथ कहा—*

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल
त्वं च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो
नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित्॥ २२॥

मृत्यो=हे यमराज; **त्वम् यत् आत्थ**=आपने जो यह कहा कि; **अत्र किल देवैः अपि**=सचमुच इस विषयपर देवताओंने भी; **विचिकित्सितम्**=विचार किया था (परंतु वे निर्णय नहीं कर पाये); **च न सुविज्ञेयम्**=और वह सुविज्ञेय भी नहीं है (इतना ही नहीं); **च**=इसके सिवा; **अस्य वक्ता**=इस विषयका कहनेवाला भी; **त्वादृक्**=आपके-जैसा; **अन्यः न लभ्यः**=दूसरा नहीं मिल सकता; **[अतः]**=इसलिये मेरी समझमें तो; **एतस्य तुल्यः**=इसके समान; **अन्यः कश्चित्**=दूसरा कोई भी; **वरः न**=वर नहीं है ॥ २२ ॥

व्याख्या—हे मृत्यो ! आप जो यह कहते हैं कि पूर्वकालमें देवताओंने भी जब इस विषयपर विचार-विनिमय किया था तथा वे भी इसे जान नहीं पाये थे और यह विषय सहज नहीं है, बड़ा ही सूक्ष्म है; तब यह तो सिद्ध ही है कि यह बड़े ही महत्त्वका विषय है और ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयको समझानेवाला आपके समान अनुभवी वक्ता मुझे ढूँढ़नेपर भी दूसरा कोई मिल नहीं सकता। आप कहते हैं इसे छोड़कर दूसरा वर माँग लो। परंतु मैं तो समझता हूँ कि इसकी तुलनाका दूसरा कोई वर है ही नहीं। अतएव कृपापूर्वक मुझे इसीका उपदेश कीजिये ॥ २२ ॥

सम्बन्ध—*विषयकी कठिनतासे नचिकेता नहीं घबराया, वह अपने निश्चयपर ज्यों-का-त्यों दृढ़ रहा। इस एक परीक्षामें वह उत्तीर्ण हो गया। अब यमराज दूसरी परीक्षाके रूपमें उसके सामने विभिन्न प्रकारके प्रलोभन रखनेकी बात सोचकर उससे कहने लगे—*

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व
बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व
स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ २३ ॥

शतायुषः=सैकड़ों वर्षोंकी आयुवाले; **पुत्रपौत्रान्**=बेटे और पोतोंको (तथा); **बहून् पशून्**=बहुत-से गौ आदि पशुओंको (एवं); **हस्तिहिरण्यम्**=हाथी, सुवर्ण और; **अश्वान् वृणीष्व**=घोड़ोंको माँग लो; **भूमेः महत्**

आयतनम्=भूमिके बड़े विस्तारवाले मण्डल (साम्राज्य) को; **वृणीष्व**=माँग लो; **स्वयम् च**=तुम स्वयं भी; **यावत् शरदः**=जितने वर्षोंतक; **इच्छसि**=चाहो; **जीव**=जीते रहो ॥ २३ ॥

व्याख्या—नचिकेता! तुम बड़े भोले हो, क्या करोगे इस वरको लेकर? तुम ग्रहण करो इन सुखकी विशाल सामग्रियोंको। इस सौ-सौ वर्ष जीनेवाले पुत्र-पौत्रादि बड़े परिवारको माँग लो। गौ आदि बहुत-से उपयोगी पशु, हाथी, सुवर्ण, घोड़े और विशाल भूमण्डलके महान् साम्राज्यको माँग लो और इन सबको भोगनेके लिये जितने वर्षोंतक जीनेकी इच्छा हो, उतने ही वर्षोंतक जीते रहो ॥ २३ ॥

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं
वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि
कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥ २४ ॥

नचिकेतः=हे नचिकेता; **वित्तम् चिरजीविकाम्**=धन, सम्पत्ति और अनन्तकालतक जीनेके साधनोंको; **यदि त्वम्**=यदि तुम; **एतत्तुल्यम्**=इस आत्मज्ञानविषयक वरदानके समान; **वरम् मन्यसे वृणीष्व**=वर मानते हो तो माँग लो; **च महाभूमौ**=और तुम इस पृथ्वीलोकमें; **एधि**=बड़े भारी सम्राट् बन जाओ; **त्वा कामानाम्**=(मैं) तुम्हें सम्पूर्ण भोगोंमेंसे; **कामभाजम्**=अति उत्तम भोगोंको भोगनेवाला; **करोमि**=बना देता हूँ ॥ २४ ॥

व्याख्या—'नचिकेता! यदि तुम प्रचुर धन-सम्पत्ति, दीर्घजीवनके लिये उपयोगी सुख-सामग्रियाँ अथवा और भी जितने भोग मनुष्य भोग सकता है, उन सबको मिलाकर उस आत्मतत्त्व-विषयक वरके समान समझते हो तो इन सबको माँग लो। तुम इस विशाल भूमिके सम्राट् बन जाओ। मैं तुम्हें समस्त भोगोंको इच्छानुसार भोगनेवाला बनाये देता हूँ।' इस प्रकार यहाँ यमराजने वाक्चातुर्यसे आत्मतत्त्वका महत्त्व बढ़ाते हुए नचिकेताको विशाल भोगोंका

प्रलोभन दिया॥ २४॥

सम्बन्ध—*इतनेपर भी नचिकेता अपने निश्चयपर अटल रहा, तब स्वर्गके दैवी भोगोंका प्रलोभन देते हुए यमराजने कहा—*

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके
सर्वान् कामाँ्श्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या
न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः॥ २५॥

ये ये कामाः=जो-जो भोग; **मर्त्यलोके**=मनुष्यलोकमें; **दुर्लभाः**= दुर्लभ हैं; **सर्वान् कामान्**=उन सम्पूर्ण भोगोंको; **छन्दतः प्रार्थयस्व**=इच्छानुसार माँग लो; **सरथाः सतूर्याः इमाः रामाः**=रथ और नाना प्रकारके बाजोंके सहित इन स्वर्गकी अप्सराओंको (अपने साथ ले जाओ); **मनुष्यैः ईदृशाः**=मनुष्योंको ऐसी स्त्रियाँ; **न हि लम्भनीयाः**=निःसंदेह अलभ्य हैं; **मत्प्रत्ताभिः**=मेरे द्वारा दी हुई; **आभिः**=इन स्त्रियोंसे; **परिचारयस्व**=तुम अपनी सेवा कराओ; **नचिकेतः**= हे नचिकेता; **मरणम्**=मरनेके बाद आत्माका क्या होता है; **मा अनुप्राक्षीः**= इस बातको मत पूछो॥ २५॥

व्याख्या—नचिकेता! जो-जो भोग मृत्युलोकमें दुर्लभ हैं, उन सबको तुम अपने इच्छानुसार माँग लो। ये रथों और विविध प्रकारके वाद्योंसहित जो स्वर्गकी सुन्दरी रमणियाँ हैं, ऐसी रमणियाँ मनुष्योंमें कहीं नहीं मिल सकतीं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इनके लिये ललचाते रहते हैं। मैं इन सबको तुम्हें सहज ही दे रहा हूँ। तुम इन्हें ले जाओ और इनसे अपनी सेवा कराओ; परंतु नचिकेता! आत्मतत्त्वविषयक प्रश्न मत पूछो॥ २५॥

सम्बन्ध—*यमराज शिष्यपर स्वाभाविक ही दया करनेवाले महान् अनुभवी आचार्य हैं। इन्होंने अधिकारिपरीक्षाके साथ ही इस प्रकार भय और एकके बाद एक उत्तम भोगोंका प्रलोभन दिखाकर, जैसे खूँटेको हिला-हिलाकर दृढ़ किया जाता है, वैसे ही*

नचिकेताके वैराग्यसम्पन्न निश्चयको और भी दृढ़ किया। पहले कठिनताका भय दिखाया, फिर इस लोकके एक-से-एक बढ़कर भोगोंके चित्र उसके सामने रखे और अन्तमें स्वर्गलोकमें भी उसका वैराग्य करा देनेके लिये स्वर्गके दैवी भोगोंका चित्र उपस्थित किया और कहा कि इनको यदि तुम अपने उस आत्मतत्त्वसम्बन्धी वरके समान समझते हो तो इन्हें माँग लो। परंतु नचिकेता तो दृढ़निश्चयी और सच्चा अधिकारी था। वह जानता था कि इस लोक और परलोकके बड़े-से-बड़े भोग-सुखकी आत्मज्ञानके सुखके किसी क्षुद्रतम अंशके साथ भी तुलना नहीं की जा सकती। अतएव उसने अपने निश्चयका युक्तिपूर्वक समर्थन करते हुए पूर्ण वैराग्ययुक्त वचनोंमें यमराजसे कहा—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ २६ ॥

अन्तक=हे यमराज! (जिनका आपने वर्णन किया, वे); **श्वोभावाः**=क्षणभङ्गुर भोग (और उनसे प्राप्त होनेवाले सुख); **मर्त्यस्य**=मनुष्यके; **सर्वेन्द्रियाणाम्**=अन्तःकरणसहित सम्पूर्ण इन्द्रियोंका; **यत् तेजः**=जो तेज है; **एतत्**=उसको; **जरयन्ति**=क्षीण कर डालते हैं; **अपि सर्वम्**=इसके सिवा समस्त; **जीवितम्**=आयु (चाहे वह कितनी भी बड़ी क्यों न हो); **अल्पम् एव**=अल्प ही है (इसलिये); **तव वाहाः**=ये आपके रथ आदि वाहन और; **नृत्यगीते**=ये अप्सराओंके नाच-गान; **तव एव**=आपके ही पास रहें (मुझे नहीं चाहिये) ॥ २६ ॥

व्याख्या—हे सबका अन्त करनेवाले यमराज! आपने जिन भोग्य वस्तुओंकी महिमाके पुल बाँधे हैं, वे सभी क्षणभङ्गुर हैं। कलतक रहेंगी या नहीं, इसमें भी संदेह है। इनके संयोगसे प्राप्त होनेवाला सुख वास्तवमें सुख ही नहीं है, वह तो दुःख ही है (गीता ५। २२)। ये भोग्यवस्तुएँ कोई लाभ तो देतीं ही नहीं, वरं मनुष्यकी इन्द्रियोंके तेज और धर्मको हरण कर लेती हैं। आपने जो दीर्घजीवन देना चाहा है, वह भी अनन्तकालकी तुलनामें अत्यन्त

अल्प ही है। जब ब्रह्मा आदि देवताओंका जीवन भी अल्पकालका है—एक दिन उन्हें भी मरना पड़ता है, तब औरोंकी तो बात ही क्या है। अतएव मैं यह सब नहीं चाहता। ये आपके रथ, हाथी, घोड़े, ये रमणियाँ और इनके नाच-गान आप अपने ही पास रखें॥ २६॥

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत् त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं
वरस्तु मे वरणीयः स एव॥ २७॥

मनुष्यः=मनुष्य; **वित्तेन**=धनसे; **तर्पणीयः न**=कभी भी तृप्त नहीं किया जा सकता है; **चेत्**=जब कि (हमने); **त्वा अद्राक्ष्म**=आपके दर्शन पा लिये हैं (तब); **वित्तम्**=धनको; **लप्स्यामहे**=(तो हम) पा ही लेंगे; (और) **त्वम् यावत्**=आप जबतक; **ईशिष्यसि**=शासन करते रहेंगे (तबतक तो); **जीविष्यामः**=हम जीते ही रहेंगे (इन सबको भी क्या माँगना है अतः); **मे वरणीयः वरः तु**=मेरे माँगनेलायक वर तो; **सः एव**=वह (आत्म-ज्ञान) ही है॥ २७॥

व्याख्या—आप जानते ही हैं, धनसे मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता। आगमें घी-ईंधन डालनेसे जैसे आग जोरोंसे भड़कती है, उसी प्रकार धन और भोगोंकी प्राप्तिसे भोग-कामनाका और भी विस्तार होता है। वहाँ तृप्ति कैसी। वहाँ तो दिन-रात अपूर्णता और अभावकी अग्निमें ही जलना पड़ता है। ऐसे दुःखमय धन और भोगोंको कोई भी बुद्धिमान् पुरुष नहीं माँग सकता। मुझे अपने जीवननिर्वाहके लिये जितने धनकी आवश्यकता होगी, उतना तो आपके दर्शनसे अपने-आप प्राप्त हो जायगा। रही दीर्घ जीवनकी बात, सो जबतक मृत्युके पदपर आपका शासन है, तबतक मुझे मरनेका भी भय क्यों होने लगा। अतएव किसी भी दृष्टिसे दूसरा वर माँगना उचित नहीं मालूम होता। इसलिये मेरा प्रार्थनीय तो वह आत्मतत्त्वविषयक वर ही है। मैं उसे लौटा नहीं सकता॥ २७॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार भोगोंकी तुच्छताका वर्णन करके अब नचिकेता अपने वरका महत्त्व बतलाता हुआ उसीको प्रदान करनेके लिये दृढ़तापूर्वक निवेदन करता है—*

अजीर्यताममृतानामुपेत्य
जीर्यन् मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदा-
नतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥ २८ ॥

जीर्यन् मर्त्यः=यह मनुष्य जीर्ण होनेवाला और मरणधर्मा है; **प्रजानन्**=इस तत्त्वको भलीभाँति समझनेवाला; **क्वधःस्थः**=मनुष्यलोकका निवासी; **कः**=कौन (ऐसा) मनुष्य है (जो कि); **अजीर्यताम्**=बुढ़ापेसे रहित; **अमृतानाम्**=न मरनेवाले (आप-सदृश) महात्माओंका; **उपेत्य**=सङ्ग पाकर भी; **वर्णरतिप्रमोदान्**=(स्त्रियोंके) सौन्दर्य, क्रीडा और आमोद-प्रमोदका; **अभिध्यायन्**=बार-बार चिन्तन करता हुआ; **अतिदीर्घे**=बहुत कालतक; **जीविते**=जीवित रहनेमें; **रमेत**=प्रेम करेगा ? ॥ २८ ॥

व्याख्या—हे यमराज ! आप ही बताइये—भला, आप-सरीखे अजर-अमर महात्मा देवताओंका दुर्लभ एवं अमोघ सङ्ग प्राप्त करके मृत्यु-लोकका जरा-मरणशील ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य होगा जो स्त्रियोंके सौन्दर्य, क्रीडा और आमोद-प्रमोदमें आसक्त होकर उनकी ओर दृष्टिपात करेगा और इस लोकमें दीर्घकालतक जीवित रहनेमें आनन्द मानेगा ? ॥ २८ ॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो
यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥ २९ ॥

मृत्यो=हे यमराज; **यस्मिन्**=जिस; **महति साम्पराये**=महान् आश्चर्यमय परलोकसम्बन्धी आत्मज्ञानके विषयमें; **इदम् विचिकित्सन्ति**=(लोग) यह शङ्का करते हैं कि यह आत्मा मरनेके बाद रहता है या नहीं; **(तत्र) यत्**=उसमें जो निर्णय है; **तत् नः ब्रूहि**=वह आप हमें बतलाइये; **यः अयम्**=

जो यह; **गूढम् अनुप्रविष्टः वरः**=अत्यन्त गम्भीरताको प्राप्त हुआ वर है; **तस्मात्**=इससे; **अन्यम्**=दूसरा वर; **नचिकेताः**=नचिकेता; **न वृणीते**= नहीं माँगता ॥ २९ ॥

व्याख्या—नचिकेता कहता है—'हे यमराज! जिस आत्मतत्त्व-सम्बन्धी महान् ज्ञानके विषयमें लोग यह शङ्का करते हैं कि मरनेके बाद आत्माका अस्तित्व रहता है या नहीं, उसके सम्बन्धमें निर्णयात्मक जो आपका अनुभूत ज्ञान हो, मुझे कृपापूर्वक उसीका उपदेश कीजिये। यह आत्मतत्त्व-सम्बन्धी वर अत्यन्त गूढ़ है—यह सत्य है; पर आपका शिष्य यह नचिकेता इसके अतिरिक्त दूसरा कोई वर नहीं चाहता' ॥ २९ ॥

प्रथम वल्ली समाप्त ॥ १ ॥



द्वितीय वल्ली

सम्बन्ध—*इस प्रकार परीक्षा करके जब यमराजने समझ लिया कि नचिकेता दृढ़ निश्चयी, परम वैराग्यवान् एवं निर्भीक है, अतः ब्रह्मविद्याका उत्तम अधिकारी है तब ब्रह्मविद्याका उपदेश आरम्भ करनेके पहले उसका महत्त्व प्रकट करते हुए यमराज बोले—*

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-
स्ते उभे नानार्थे पुरुषँ् सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु
भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥

श्रेयः=कल्याणका साधन; **अन्यत्**=अलग है; **उत**=और; **प्रेयः**=प्रिय लगनेवाले भोगोंका साधन; **अन्यत् एव**=अलग ही है; **ते**=वे; **नानार्थे**= भिन्न-भिन्न फल देनेवाले; **उभे**=दोनों साधन; **पुरुषम्**=मनुष्यको; **सिनीतः**= बाँधते हैं—अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते हैं; **तयोः**=उन दोनोंमेंसे; **श्रेयः**=कल्याणके साधनको; **आददानस्य**=ग्रहण करनेवालेका; **साधु**

****

भवति=कल्याण होता है; **उ यः**=परंतु जो; **प्रेयः वृणीते**=सांसारिक भोगोंके साधनको स्वीकार करता है; **[सः**=वह;**]** **अर्थात्**=यथार्थ लाभसे; **हीयते**=भ्रष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

व्याख्या—मनुष्य-शरीर अन्यान्य योनियोंकी भाँति केवल कर्मोंका फल भोगनेके लिये ही नहीं मिला है। इसमें मनुष्य भविष्यमें सुख देनेवाले साधनका अनुष्ठान भी कर सकता है। वेदोंमें सुखके साधन दो बताये गये हैं—(१) श्रेय अर्थात् सदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंसे सर्वथा छूटकर नित्य आनन्दस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त करनेका उपाय और (२) प्रेय अर्थात् स्त्री, पुत्र, धन, मकान, सम्मान, यश आदि इहलोकको और स्वर्गलोककी जितनी भी प्राकृत सुखभोगकी सामग्रियाँ हैं, उनकी प्राप्तिका उपाय। इस प्रकार अपने-अपने ढंगसे मनुष्यको सुख पहुँचा सकनेवाले ये दोनों साधन मनुष्यको बाँधते हैं—उसे अपनी-अपनी ओर खींचते हैं। अधिकांश लोग तो 'भोगोंमें प्रत्यक्ष और तत्काल सुख मिलता है' इस प्रतीतिके कारण, उसका परिणाम सोचे-समझे बिना ही प्रेयकी ओर खिंच जाते हैं; परंतु कोई-कोई भाग्यवान् मनुष्य भगवान्की दयासे प्राकृत भोगोंकी आपातरमणीयता एवं परिणामदुःखताका रहस्य जानकर उनकी ओरसे विरक्त हो श्रेयकी ओर आकर्षित हो जाता है। इन दोनों प्रकारके मनुष्योंमेंसे जो भगवान्की कृपाका पात्र होकर श्रेयको अपना लेता है और तत्परताके साथ उसके साधनमें लग जाता है, उसका तो सब प्रकारसे कल्याण हो जाता है। वह सदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंसे सर्वथा छूटकर अनन्त असीम आनन्दस्वरूप परमात्माको पा लेता है। परंतु जो सांसारिक सुखके साधनोंमें लग जाता है, वह अपने मानव-जीवनके परम लक्ष्य परमात्माकी प्राप्तिरूप यथार्थ प्रयोजनको सिद्ध नहीं कर पाता, इसलिये उसे आत्यन्तिक और नित्य सुख नहीं मिलता। उसे तो भ्रमवश सुखरूप प्रतीत होनेवाले वे अनित्य भोग मिलते हैं, जो वास्तवमें दुःखरूप ही हैं। अतः वह वास्तविक सुखसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥ २॥

श्रेयः च प्रेयः च=श्रेय और प्रेय—ये दोनों ही; **मनुष्यम् एतः**=मनुष्यके सामने आते हैं; **धीरः**=बुद्धिमान् मनुष्य; **तौ**=उन दोनोंके स्वरूपपर; **सम्परीत्य**=भलीभाँति विचार करके; **विविनक्ति**=उनको पृथक्-पृथक् समझ लेता है; (और) **धीरः**=वह श्रेष्ठबुद्धिमनुष्य; **श्रेयः हि**=परम कल्याणके साधनको ही; **प्रेयसः**=भोग-साधनकी अपेक्षा; **अभिवृणीते**=श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है (परंतु); **मन्दः**=मन्दबुद्धिवाला मनुष्य; **योगक्षेमात्**=लौकिक योगक्षेमकी इच्छासे; **प्रेयः वृणीते**=भोगोंके साधनरूप प्रेयको अपनाता है॥ २॥

व्याख्या—अधिकांश मनुष्य तो पुनर्जन्ममें विश्वास न होनेके कारण इस विषयमें विचार ही नहीं करते, वे भोगोंमें आसक्त होकर अपने देवदुर्लभ मनुष्य-जीवनको पशुवत् भोगोंके भोगनेमें ही समाप्त कर देते हैं। किंतु जिनका पुनर्जन्ममें और परलोकमें विश्वास है, उन विचारशील मनुष्योंके सामने जब ये श्रेय और प्रेय दोनों आते हैं, तब वे इन दोनोंके गुण-दोषोंपर विचार करके दोनोंको पृथक्-पृथक् समझनेकी चेष्टा करते हैं। इनमें जो श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न होता है, वह तो दोनोंके तत्त्वको पूर्णतया समझकर नीर-क्षीर-विवेकी हंसकी तरह प्रेयकी उपेक्षा करके श्रेयको ही ग्रहण करता है। परंतु जो मनुष्य अल्पबुद्धि है, जिसकी बुद्धिमें विवेक-शक्तिका अभाव है, वह श्रेयके फलमें अविश्वास करके प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले लौकिक योगक्षेमकी सिद्धिके लिये प्रेयको अपनाता है, वह इतना ही समझता है कि जो कुछ भोगपदार्थ प्राप्त हैं, वे सुरक्षित बने रहें और जो अप्राप्त हैं, वे प्रचुर मात्रामें मिल जायँ। यही योगक्षेम है॥ २॥

सम्बन्ध—*परमात्माकी प्राप्तिके साधनरूप श्रेयकी प्रशंसा करके अब यमराज*

साधारण मनुष्योंसे नचिकेताकी विशेषता दिखलाते हुए उसके वैराग्यकी प्रशंसा करते हैं—

स त्वं प्रियान् प्रियरूपाँश्च कामा-
नभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।
नैताँ सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो
यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥ ३ ॥

नचिकेतः=हे नचिकेता ! (उन्हीं मनुष्योंमें); **सः त्वम्**=तुम (ऐसे निःस्पृह हो कि); **प्रियान् च**=प्रिय लगनेवाले और; **प्रियरूपान्**=अत्यन्त सुन्दर रूपवाले; **कामान्**=इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंको; **अभिध्यायन्**=भलीभाँति सोच-समझकर; **अत्यस्राक्षीः**=(तुमने) छोड़ दिया; **एताम् वित्तमयीम् सृङ्काम्**=इस सम्पत्तिरूप शृङ्खला (बेड़ी) को; **न अवाप्तः**=(तुम) नहीं प्राप्त हुए (इसके बन्धनमें नहीं फँसे); **यस्याम्**=जिसमें; **बहवः मनुष्याः**=बहुत-से मनुष्य; **मज्जन्ति**=फँस जाते हैं ॥ ३ ॥

व्याख्या—यमराज कहते हैं—'हे नचिकेता ! तुम्हारी परीक्षा करके मैंने अच्छी तरह देख लिया कि तुम बड़े बुद्धिमान्, विवेकी तथा वैराग्यसम्पन्न हो। अपनेको बहुत बड़े चतुर, विवेकी और तार्किक माननेवाले लोग भी जिस चमक-दमकवाली सम्पत्तिके मोहजालमें फँस जाया करते हैं, उसे भी तुमने स्वीकार नहीं किया। मैंने बड़ी ही लुभावनी भाषामें तुम्हें बार-बार पुत्र, पौत्र, हाथी, घोड़े, गौएँ, धन, सम्पत्ति, भूमि आदि अनेकों दुष्प्राप्य और लोभनीय भोगोंका प्रलोभन दिया; इतना ही नहीं, स्वर्गके दिव्य भोगों और अप्रतिम सुन्दरी स्वर्गीय रमणियोंके चिर-भोगसुखका लालच दिया; परंतु तुमने सहज ही उन सबकी उपेक्षा कर दी। अतः तुम अवश्य ही परमात्मतत्त्वका श्रवण करनेके सर्वोत्तम अधिकारी हो ॥ ३ ॥

दूरमेते विपरीते विषूची
अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये
न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥ ४ ॥

या अविद्या=जो कि अविद्या; **च विद्या इति ज्ञाता**=और विद्या नामसे विख्यात हैं; **एते**=ये दोनों; **दूरम् विपरीते**=परस्पर अत्यन्त विपरीत; (और) **विषूची**=भिन्न-भिन्न फल देनेवाली हैं; **नचिकेतसम्**=तुम नचिकेताको; **विद्याभीप्सिनम् मन्ये**=मैं विद्याका ही अभिलाषी मानता हूँ (क्योंकि); **त्वा बहवः कामाः**=तुमको बहुत-से भोग; **न अलोलुपन्त**=(किसी प्रकार भी) नहीं लुभा सके ॥ ४ ॥

व्याख्या—ये अविद्या और विद्या नामसे प्रसिद्ध दो साधन पृथक्-पृथक् फल देनेवाले हैं और परस्पर अत्यन्त विरुद्ध हैं। जिसकी भोगोंमें आसक्ति है, वह कल्याण-साधनमें आगे नहीं बढ़ सकता और जो कल्याणमार्गका पथिक है, वह भोगोंकी ओर दृष्टि नहीं डालता। वह सब प्रकारके भोगोंको दुःखरूप मानकर उनका परित्याग कर देता है। हे नचिकेता ! मैं मानता हूँ कि तुम विद्याके ही अभिलाषी हो, क्योंकि बहुत-से बड़े-बड़े भोग भी तुम्हारे मनमें किञ्चिन्मात्र भी लोभ नहीं उत्पन्न कर सके ॥ ४ ॥

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः* ॥ ५ ॥

अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमानाः=अविद्याके भीतर रहते हुए (भी); **स्वयं धीराः**=अपने-आपको बुद्धिमान् (और); **पण्डितम् मन्यमानाः**=विद्वान् माननेवाले; **मूढाः**=(भोगकी इच्छा करनेवाले) वे मूर्खलोग; **दन्द्रम्यमाणाः**= नाना योनियोंमें चारों ओर भटकते हुए; **(तथा) परियन्ति**=ठीक वैसे ही ठोकरें खाते रहते हैं; **यथा**=जैसे; **अन्धेन एव नीयमानाः**=अन्धे मनुष्यके द्वारा चलाये जानेवाले; **अन्धाः**=अन्धे (अपने लक्ष्यतक न पहुँचकर इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते हैं) ॥ ५ ॥

---

* यह मन्त्र मुण्डकोपनिषद्में भी आया है। (मु० उ० १।२।८)

व्याख्या—जब अन्धे मनुष्यको मार्ग दिखलानेवाला भी अन्धा ही मिल जाता है, तब जैसे वह अपने अभीष्ट स्थानपर नहीं पहुँच पाता, बीचमें ही ठोकरें खाता भटकता है और काँटे-कंकड़ोंसे बिंधकर या गहरे गड्ढे आदिमें गिरकर अथवा किसी चट्टान, दीवाल और पशु आदिसे टकराकर नाना प्रकारके कष्ट भोगता है, वैसे ही उन मूर्खोंको भी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि विविध दुःखपूर्ण योनियोंमें एवं नरकादिमें प्रवेश करके अनन्त जन्मोंतक अनन्त यन्त्रणाओंका भोग करना पड़ता है, जो अपने-आपको ही बुद्धिमान् और विद्वान् समझते हैं, विद्या-बुद्धिके मिथ्याभिमानमें शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंकी कुछ भी परवा न करके उनकी अवहेलना करते हैं और प्रत्यक्ष सुखरूप प्रतीत होनेवाले भोगोंका भोग करनेमें तथा उनके उपार्जनमें ही निरन्तर संलग्न रहकर मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करते रहते हैं॥ ५॥

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥ ६॥

वित्तमोहेन मूढम्=इस प्रकार सम्पत्तिके मोहसे मोहित; **प्रमाद्यन्तम् बालम्**=निरन्तर प्रमाद करनेवाले अज्ञानीको; **साम्परायः**=परलोक; **न प्रतिभाति**=नहीं सूझता; **अयम् लोकः**=(वह समझता है) कि यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला लोक ही सत्य है; **परः न अस्ति**=इसके सिवा दूसरा (स्वर्ग-नरक आदि लोक) कुछ भी नहीं है; **इति मानी**=इस प्रकार माननेवाला अभिमानी मनुष्य; **पुनः पुनः**=बार-बार; **मे वशम्**=मेरे (यमराजके) वशमें; **आपद्यते**=आता है॥ ६॥

व्याख्या—इस प्रकार मनुष्य-जीवनके महत्त्वको नहीं समझनेवाला अभिमानी मनुष्य सांसारिक भोग-सम्पत्तिकी प्राप्तिके साधनरूप धनादिके मोहसे मोहित हुआ रहता है; अतएव भोगोंमें आसक्त होकर वह प्रमादपूर्वक

मनमाना आचरण करने लगता है। उसे परलोक नहीं सूझता। उसके अन्तः-करणमें इस प्रकारके विचार उत्पन्न ही नहीं होते कि मरनेके बाद मुझे अपने समस्त कर्मोंका फल भोगनेके लिये बाध्य होकर बारम्बार विविध योनियोंमें जन्म लेना पड़ेगा। वह मूर्ख समझता है कि बस, जो कुछ यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देता है, यही लोक है। इसीकी सत्ता है। यहाँ जितना विषय-सुख भोग लिया जाय, उतनी ही बुद्धिमानी है। इसके आगे क्या है। परलोकको किसने देखा है। परलोक तो लोगोंकी कल्पनामात्र है इत्यादि। इस प्रकारकी मान्यता रखनेवाला मनुष्य बारम्बार यमराजके चंगुलमें पड़ता है और वे उसके कर्मानुसार उसे नाना योनियोंमें ढकेलते रहते हैं। उसके जन्म-मरणका चक्र नहीं छूटता॥ ६॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार विषयासक्त, प्रत्यक्षवादी मूर्खोंकी निन्दा करके अब उस आत्मतत्त्वकी और उसको जानने, समझने तथा वर्णन करनेवाले पुरुषोंकी दुर्लभताका वर्णन करते हैं—*

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-
ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥ ७॥

यः बहुभिः=जो (आत्मतत्त्व) बहुतोंको तो; **श्रवणाय अपि**=सुननेके लिये भी; **न लभ्यः**=नहीं मिलता; **यम्**=जिसको; **बहवः**=बहुत-से लोग; **शृण्वन्तः अपि**=सुनकर भी; **न विद्युः**=नहीं समझ सकते; **अस्य**=ऐसे इस गूढ़ आत्मतत्त्वका; **वक्ता आश्चर्यः**=वर्णन करनेवाला महापुरुष आश्चर्यमय है (बड़ा दुर्लभ है); **लब्धा कुशलः**=उसे प्राप्त करनेवाला भी बड़ा कुशल (सफल-जीवन) कोई एक ही होता है; **कुशलानुशिष्टः**=और जिसे तत्त्वकी उपलब्धि हो गयी है, ऐसे ज्ञानी महापुरुषके द्वारा शिक्षा प्राप्त किया हुआ; **ज्ञाता**=आत्मतत्त्वका ज्ञाता भी; **आश्चर्यः**=आश्चर्यमय है (परम दुर्लभ है)॥ ७॥

व्याख्या—आत्मतत्त्वकी दुर्लभता बतलानेके लिये यमराजने कहा—